thearyasamaj.org

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

दिसम्बर २०१४ Date of Printing = ‡-ƒ„-…ƒ†
प्रकाशन दिनांक= ‡-ƒ„-…ƒ†

वर्ष ४४ : अङ्क २
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : मार्गशीर्ष-पौष २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
प्रबन्ध सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

❑ ज्योतिष में अतिक्रमण २
❑ वेदोपदेश ३
❑ मातृभाषा हिन्दी का सम्मान करो ४
❑ सम्पादकीय - स्वामी श्रद्धानन्द ५
❑ प्रेरक व्यक्तित्व ८
❑ स्वयंभू सन्त रामपाल और ... ९
❑ आस्था की गुफा में ११
❑ छान्दोग्य में शरीर में देवता १४
❑ ईश्वर का भय १७
❑ मेरे प्रिय सहपाठी ... २१
❑ लोकसेवा ही ईश्वर की ... २२
❑ मेरे पथ प्रदर्शक ... २५
❑ और राजवीर शास्त्री जी नहीं रहे २६

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

thearyasamaj.org

ज्योतिष में अतिक्रमण

(डॉ. दार्शनेय लोकेश)

एक पाठक का पत्र- लोकेश जी को सादर प्रणाम। आपक लेख - भ्रान्तियाँ और त्रुटियाँ दूर करें'' पढ़ तो लिया, लेकिन अल्पज्ञ होने से समझने में थोड़ा समय लगेगा। क्षमा करेंगे। सत्ता के हस्तान्तरण का लोभ देकर माउण्टबेटन ने हमीं से वैदिक सनातन संस्कृति की आधारशिलाओं गुरूकुल, गौ, गंगा और गायत्री को नष्ट करा दिया है। अब कुछ समझ आ रहा है कि अतिक्रमण ज्योतिष में भी किया गया है।

अयोध्या प्रसाद त्रिपाठी (सूचना सचिव) आर्यावर्त सरकार।

अतिक्रमण ज्योतिष में भी हुआ ही है परन्तु उस अतिक्रमण में बाहरी तत्वों की चालाकी और भीतरी तत्वों की नींद दोनों का ही हाथ है।

ग्रहण के बारे में दो बातें खास हैं। पहली तो ये कि कोई पंचांगकार स्वयं ग्रहण गणित नहीं करता है। नासा या उज्जैन जैसी वैश्विक या देश की वेधशालाएँ सूचनाएँ निकालती हैं और हमारे पंचांगकार उन सूचनाओं का अपने पंचांग हेतु उपयोग करते हैं। पंचांगों में छपी होने मात्र से आम लोग ये समझते हैं कि पंचांग बनाने वाले की ये सब अपनी गणित या जानकारी है और चूँकि उसके अनुसार ग्रहण होते दिख भी जाते हैं इसलिए "ये तो उस पंचांग की सत्यता का साक्षात् प्रमाण है।" ऐसा एक गलत सन्देश लोगों को चला जाता है। सच्चाई ये है कि ९९ प्रतिशत पंचांगकारों को तो ग्रहण के गणित की समझ ही नहीं है, कर लेना तो बहुत दूर की बात है।

दूसरी बात ये है कि ग्रहण गणित जिस सूर्य चन्द्रमा ओर राहु से होता है वो सूर्य, चन्द्र और राहु उस स्थिति में होते ही नहीं हैं, जो आम पंचांगों में दी हुई होती है। ग्रहों की इस स्थिति को ज्योतिषीय भाषा में "भोगांश या अंग्रेजी में Longitues" नाम से जाना जाता है। ये "भोगांश" वो होते हैं, जो मेरा पंचांग देता है या जो कोई भी "वेधशाला" देती है। इसका अर्थ ये हुआ कि पंचांगों में जो "भोगांश" दिए होते हैं, उन से ग्रहण गणित तो होती ही नहीं है- हो ही नहीं सकती है। इस सत्य को मेरे पंचांग अर्थात् 'SMKATP-,,,‰f' के पृष्ठ ५ पर अपने एक सन्देश में, डॉ० रहिमाल प्रसाद तिवारी जी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से परिभाषित और स्पष्ट किया है। आप यह सन्देश अवश्य देखिएगा।

ग्रहण गणित करना एक गणितीय अर्थात् एस्ट्रोनॉमिकल तथ्य है ना कि अस्ट्रोलॉजिकल। अपर संस्कृतियों में खगोलिकी और फलित के लिए अलग अलग शब्द हैं किन्तु दुर्भाग्य से दोनों को ही केवल 'ज्योतिष कह कर जाना जाता है। वास्तव में 'खगोलिकी और फलित' दो शब्द हमारे यहाँ भी हैं परन्तु इनका उपयोग नहीं के बराबर है और इस का ही दुष्परिणाम है कि कुंडली बनाने और पढ़ने की मामूली क्षमता वाला आदमी भी हमारे यहाँ 'आदरणीय ज्योतिषी' हो जाता है। इस एक बात का असर है कि आर्य समाज जैसी बुद्धिजीवी लोगों की संस्था भी ज्योतिष उच्चारण से जन्मपत्री को ही "पहचान" पाता है और अन्य लोग ज्योतिष विद्या को उसी जन्मपत्री की विद्या के रूप में परिभाषित करते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम भी इसी परिभाषा पर अपना कदमताल कर रहे हैं। अपनी सारी शक्ति लगा कर भी मैं आर्यसमाजियों को इस सत्य को स्वीकार करने और सनातन समाजियों को असत्य को त्यागने के लिए मनाना तो क्या आकर्षित भी नहीं कर पा रहा हूँ। यहाँ आर्य समाजी (अधिकतर, सब नहीं) समझते हैं कि- वाह! हम जो समझते हैं, वो

शेष पृष्ठ २४ पर

thearyasamaj.org

ओ३म्

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व।।१।।

य० ३०/३।।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **यज्ञः=स्पष्टम्** देवता। निचृत्पंक्तिः छन्दः। पञ्चमः स्वरः।।

ईश्वरेणैतत् सर्वमाद्येऽध्याये विधायेदानीं द्वितीयेऽध्याये प्राणिनां सुखायोक्तार्थस्य सिद्धिं कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते।। तत्रादौ वेद्यादिरचनमुपदिश्यते।।

ईश्वर ने यह सब प्रथम अध्याय में विधान करके अब द्वितीय अध्याय में प्राणियों के सुख के लिए उक्तार्थ की सिद्धि करने के लिए विशिष्ट विद्याओं का प्रकाश किया हैं उनमें से आदि में वेदि आदि की रचना का उपदेश किया जाता है।।।

कृष्णो॑ऽस्याखरे॒ष्ठोऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि।।१।।

पदार्थः–(कृष्णः) अग्निना छिन्नो वायुनाऽऽकर्षितो यज्ञः **(असि)** भवति। **अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (आखरेष्ठः)** समन्तात्खनति यं तस्मिन् तिष्ठतीति सः। **खनोड़डरेकेकवकाः।। अ० ३/३/१२५।। अनेन वार्तिकेनाऽऽखरः सिध्यति (अग्नये)** हवनार्थाय **(त्वा)** तद्धविः **(जुष्टम्)** प्रीत्या संशोधितम् **(प्रोक्षामि)** शोधितेन घृतादिनाऽऽर्द्री करोमि **(वेदिः)** विन्दति सुखान्यनया सा **(असि)** भवति **(बर्हिषे)** अन्तरिक्षगमनाय। **बर्हिरित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्।। निघं० १/३।। (त्वा)** तां वेदिम् **(जुष्टाम्)** प्रीत्या संपादिताम् **(प्रोक्षामि)** प्रकृष्टतया घृतादिना सिंचामि **(बर्हिः)** शुद्धमुदकम्। **बर्हिरित्युदकनामसु पठितम्।। निघं० १/१२।। (असि)** भवति **(स्रुग्भ्यः)** स्रावयन्ति=गमयन्ति हविर्येभ्यस्तेभ्यः। **अत्र स्रुगतावित्यस्मात्। चिक् च।। उ. २/६१।। अनेन चिक् प्रत्ययः (त्वा)** तत् **(जुष्टम्)** पुष्ट्यादिगुणयुक्तं प्रीतिकरं जलं पवनं वा **(प्रोक्षामि)** शोधयामि।। **अयं मंत्रः श० १/३/३/१-३ व्याख्यातः।।१।।।**

प्रमाणार्थ–(असि) भवति। यहाँ सब जगह व्यत्यय है। **(आखरेष्ठः)** 'खनो ड-डर-इक-इकवकाः' **(अ० ३/३/१२५)** इस वार्त्तिक से 'आखरः' शब्द सिद्ध होता है। **(बर्हिषे)** बर्हिः शब्द निघं० १/३ में अन्तरिक्ष नामों में पढ़ा गया है। **(बर्हिः)** बर्हिः शब्द निघं०१/१२ में उदक (जल) नामों में पढ़ा गया है। **(स्रुग्भ्यः)** यहाँ 'स्रु गतौ' धातु से 'चिक् च' उ० २/६१ इस उणादि सूत्र से चिक् प्रत्यय होता है।। २/१।।

सपदार्थान्वयः – यतोऽयं यज्ञ आखरेष्ठः समन्तात् खनति यं तस्मिन् तिष्ठतीति सः कृष्णः अग्निना छिन्नो वायुनाऽऽकर्षितो यज्ञः **(असि)=भवति, तस्मात् त्वा=तं** तद्धतिः **अहमाग्नये** हवनाऽर्थाय **जुष्टं** प्रीत्या संशोधितं **प्रोक्षामि** शोधितेन घृतादिनाऽऽद्रर्कीरोमि।

यत इयं वेदिः विन्दति सुखान्यनया सा **अन्तरिक्षस्था असि=भवति, तस्मादहं त्वा=तामि-मां** तां वेदिं **बर्हिषे अन्तरिक्षगमनाय जुष्टां** प्रीत्या **सम्पादितां प्रोक्षामि** प्रकृष्टतया घृताऽऽदिना सिञ्चामि।

यत इदं बर्हिः=उदकं शुद्धमुदकम् **अन्तरिक्षस्थं सच्छुद्धिकारि (असि)=भवति, तस्मात् त्वा=तत् शोधितं जुष्टं=हविः** पुष्ट्यादिगुणयुक्तं प्रीतिकरं जलं पवनं वा **स्रुग्भ्यः** स्रावयन्ति=गमयन्ति हविर्येभ्यस्तेभ्यः **अहं प्रोक्षामि** शोधयामि।।२/१।।

भाषार्थ :– जिससे यह यज्ञ **(आखरेष्ठः)** सब ओर से खुदे हुए वेदि स्थान में स्थित होकर **(कृष्णः)** अग्नि से सूक्ष्म-रूप तथा वायु से आकर्षित **(असि)** है, इसलिए **(त्वा)** उस होम-सामग्री को मैं **(अग्नये)** हवन करने के लिए **(जुष्टम्)** प्रीतिपूर्वक **(प्रोक्षामि)** शुद्ध घृतादि से सींचता हूँ।

जिस कारण से यह **(वेदिः)** सब सुखों को देने वाली

thearyasamaj.org

वेदि अन्तरिक्ष में स्थित **(असि)** है, इसलिए मैं **(त्वा)** उस वेदिस्थ हवि को **(बर्हिषे)** अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिए **(जुष्टाम्)** प्रीति से बनाई वेदि को **(प्रोक्षामि)** अच्छे प्रकार घृतादि से सींचता हूँ।

जिससे यह **(बर्हिः)** शुद्ध जल अन्तरिक्ष में स्थित होकर शुद्धि करने वाला होता है, इसलिए **(त्वा)** उस शुद्ध किए हुए **(जुष्टम्)** हवि को अथवा पुष्टि आदि गुणों से युक्त, प्रीतिकारक जल वा पवन को **(स्रुग्भ्यः)** हवि देने के साधन स्रुवाओं से मैं **(प्रोक्षामि)** शुद्ध करता हूँ।।२/१।।

भावार्थः— ईश्वर उपदिशति-सर्वैर्मनुष्यैर्वेदि रचयित्वा, पात्रादि-सामग्रीं गृहीत्वा, सम्यक् शोधित्वा तद्धविरग्नौ हुत्वा, कृतो यज्ञः शुद्धेन वृष्टिजलेन सर्वाओषधीः पोषयति।

भावार्थ :— ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों से, वेदि रच कर, पात्र आदि सामग्री को ग्रहण करके, अच्छी प्रकार शुद्ध की हुई उस हवि का अग्नि में होम करके किया हुआ यज्ञ, शुद्ध वर्षा जल से सब औषधियों को पुष्ट करता है।

भाष्यसार- १. यज्ञ- यह यज्ञ सब ओर से खोदे हुए हवन-कुण्ड में स्थिति रहता है। यज्ञ में होम किए हुए पदार्थ अग्नि से सूक्ष्म रूप हो जाते हैं, जिन्हें वायु आकृष्ट कर लेता है। वेदि अर्थात् वेदि में स्थित यज्ञ अन्तरिक्ष में स्थित हो जाता है। जिससे अन्तरिक्ष में स्थित जल एवं पवन शुद्ध होते हैं।

२. वेदि आदि की रचना- इस उक्त यज्ञ के लिए वेदि बनावें तथा स्रुवा आदि अन्य यज्ञपात्रों की भी रचना करें।

मातृभाषा हिन्दी का सम्मान करो

[(पं० नन्दलाल निर्भय पत्रकार भजनोपदेशक, पत्रकार, आर्य सदन वहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)]

भारत के नर-नारी मिल, भारत की ऊँची शान करो।
अपनी प्यारी मातृभाषा - हिन्दी का सम्मान करो।।
सकल देश भारत में मित्रो ! हिन्दी बोली जाती है।
काशमीर को, महाराष्ट्र से, हिन्दी सुनो मिलाती है।।
देश की खातिर जीयो-मरो सब, हिन्दी पाठ पढ़ाती है।
प्यार-प्रेम की गंग बहाओ, सुख का मार्ग दिखाती है।।
मानव हो मानवता धारो, धर्म-कर्म का ज्ञान करो।
अपनी प्यारी मातृभाषा - हिन्दी का सम्मान करो।।
नानक, तुलसी, सूरदास ने, हिन्दी को था अपनाया।
थे रसखान कवि सच्चे, हिन्दी का गौरव दर्शाया।।
कबीर दास अरु रविदास ने, हिन्दी की महिमा गाई।
हिन्दी का गुणगान रात-दिन, करती थी मीरा बाई।।
क्षेमकरण से कवी बनो तुम, जगती का कल्याण करो।
अपनी प्यारी मातृभाषा - हिन्दी का सम्मान करो।।
जगत्गुरु ऋषि दयानन्द ने, हिन्दी का प्रचार किया।
आर्यजनों को आर्य भाषा, हिन्दी को शुभ नाम दिया।।
हिन्दी में सब ग्रन्थ लिखे थे, ऋषि थे वैदिक प्रचारी।
मानवता के पूजक थे वे, दयासिंधु थे न्यायकारी।।
अपनी भाषा-वेश सुधारो, भारत का उत्थान करो।
अपनी प्यारी मातृभाषा - हिन्दी का सम्मान करो।।
नाथूराम शर्मा शंकर अरु अयोध्यासिंह उपाध्याय सुनो।
प्रकाशचन्द्र, हरिवंशराय बच्चन करते थे न्याय सुनो।।
माखनलाल चतुर्वेदी थे, कवी निराला लाशानी।
मैथिलीशरण सियारामशरण, दिनकर की कविता मनमानी।।
चन्द्र कवी की, गंग कवी की, भूषण की पहचान करो।
अपनी प्यारी मातृ भाषा हिन्दी का सम्मान करो।।
सुभद्रा कुमारी और महादेवी को हिन्दी थी प्यारी।
सती महाश्वेता देवी, हिन्दी की समर्थक थी भारी।।
जो बोलोगे वही लिखोगे, वही पढ़ोगे हिन्दी में।
अंग्रेजी से अधिक ज्ञान तुम, प्राप्त करोगे हिन्दी में।।
"नन्दलाल निर्भय" हिन्दी में, नित अपने व्याख्यान करो।
अपनी प्यारी मातृभाषा - हिन्दी का सम्मान करो।।

❑❑

thearyasamaj.org

सम्पादकीय — स्वामी श्रद्धानन्द जी : विनम्र श्रद्धांजलि

(ओमप्रकाश शास्त्री, चलभाष ०९४१६९९८८३५१)

स्वामी श्रद्धानन्द जी का आर्यसमाज के इतिहास में आदरणीय और अविस्मरणीय स्थान है, इन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को अपना प्रेरणास्रोत माना और उन्हीं के बताए आदर्शों को अपनाते हुए समाज का तन से, मन से और धन से आजीवन उपकार किया। सन् १८५६ संवत् १९२३ को जालन्धर जिले में तलवन ग्राम में श्री नानक चन्द जी के आँगन में एक बालक जन्मा, जिसका नाम माता-पिता ने मुन्शीराम रखा जबकि कुल पुरोहित ने बच्चे का नाम बृहस्पति रखा। काशी की हिन्दी पाठशाला में मुन्शीराम की विधिवत् शिक्षा प्रारम्भ हुई। इसके बाद जहाँ-जहाँ नानकचन्द जी का स्थानान्तरण होता रहा, वही-वही स्थान इस होनहार बच्चे की शिक्षा का केन्द्र बनता गया। बालक मुन्शीराम ने जब बचपन की देहलीज पार कर युवावस्था की देहलीज पर पैर रखा तो वह काल मुन्शी राम के जीवन का बड़ा उथल-पुथल वाला, व्यसन व्यूह में फंसने वाला रहा। कवि कालिदास ने ठीक ही लिखा है "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" अर्थात् चक्र की भांति आदमी की अवस्था भी ऊपर नीचे होती रहती है। मुन्शीराम से श्रद्धानन्द तक का समय बृहस्पति (मुन्शीराम) का बड़ा निर्णायक रहा। उनके जीवन में जो भटकाव आया, जिन कुसंस्कारों ने इनके जीवन में स्थान बनाया, जिन विलासिता के भँवर में ये फंसे, ये बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं, जितना यह महत्वपूर्ण है कि वे जीवन के भटकाव से, कुसंस्कारों तथा विलासिता के भंवर जाल से न केवल सफलता-पूर्वक निकले अपितु उन सब पर विजय प्राप्त कर समाज के सफल मार्ग दर्शक और प्रेरणास्रोत भी बने। स्वामी जी युवाओं के प्रेरणास्रोत थे, युवाओं के प्रेरणास्रोत हैं और युवाओं के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी बच्चों के प्रेरणास्रोत थे, बच्चों के प्रेरणास्रोत हैं और बच्चों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी आचार्यों के प्रेरणास्रोत थे, आचार्यों के प्रेरणास्रोत हैं और आचार्यों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी गृहस्थियों के प्रेरणास्रोत थे, गृहस्थियों के प्रेरणास्रोत हैं और गृहस्थियों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी दानियों के प्रेरणास्रोत थे, दानियों के प्रेरणास्रोत हैं और दानियों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी राजनीति और राजनेताओं के प्रेरणास्रोत थे, राजनीति और राजनेताओं के प्रेरणास्रोत हैं और राजनीति और राजनेताओं के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी देशभक्तों व बलिदानियों के प्रेरणास्रोत थे, देशभक्तों व बलिदानियों के प्रेरणास्रोत हैं और देशभक्तों व बलिदानियों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी समाज सुधारकों एवं समाज सेवकों के प्रेरणास्रोत थे, समाज सुधारकों एवं समाज सेवकों के प्रेरणास्रोत हैं और समाज सुधारकों एवं समाज सेवकों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी संयमियों के प्रेरणास्रोत थे, संयमियों के प्रेरणास्रोत हैं और संयमियों के प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही समूचे समाज के लिए प्रेरणास्रोत थे, हैं और प्रेरणास्रोत बने रहेंगे। स्वामी जी के संयम व धैर्य का परिचय देने वाली एक घटना को अपने पाठकों के सामने रखने के लालच को मैं रोक नहीं पा रहा हूँ। ३१ अगस्त १८९१ ई० में जब इनकी जीवनसङ्गिनी शिवदेवी जी का देहावसान हो गया तो उस समय उनके दो पुत्र व दो पुत्रियाँ थीं, जिनकी उम्र दो से दस वर्ष के बीच रही होगी। इस

thearyasamaj.org

चुनौतीपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए मुन्शीराम जी के हितैषियों ने उन्हें पुनर्विवाह की सलाह दी, तो उस समय उन सबकी सलाह को दृढ़तापूर्वक नकारते हुए जो जवाब उन्हें दिया, वो समाज व राष्ट्र को युगों-युगों तक प्रेरणा देता रहेगा। उन्होंने कहा, "मैं अब तक इन बच्चों का पिता था; अब माता की कमी भी मैं ही पूरी करूँगा।" यह कथन केवल कथन ही नहीं अपितु उनकी संकल्प शक्ति को दर्शाता है। इस संकल्प को उन्होंने सफलता पूर्वक निभाया। पारिवारिक दायित्व को बिना जीवनसङ्गिनी के सफलतापूर्वक निभाना मुन्शीराम जैसे व्यक्तित्व द्वारा ही सम्भव हो सकता है। मुन्शीराम जी ने अपनी पुत्रियों तथा दोनों पुत्रों के विवाह अन्तर्जातीय करके जात-पात के भेदभाव की दीवार को ढहाने का एक साहसिक कदम उठाया। मुन्शीराम जी के इस साहसिक कदम को हम कितना आगे बढ़ा पाये हैं, यह आज हमारे लिए आत्ममन्थन का विषय है। अन्तर्जातीय विवाह करके आपने समाज को एकता के सूत्र में बँधने-बाँधने का सन्देश दिया। यद्यपि इस कदम से आपको अपने ही लोगों के विरोध का दंश झेलना पड़ा मगर मुन्शीराम जी की समस्त जीवन झांकी को देखा जाये तो हम पायेंगे कि इस प्रकार के कितने ही अनुकूल-प्रतिकूल और उतार-चढ़ावों को तो मानो वे सहने के आदी हो गये हैं क्योंकि हमारे चरितनायक के प्रेरणास्रोत युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी हैं। स्वामी दयानन्द जी के सान्निध्य से पूर्व मुन्शीराम जी का जीवन विकारों का शिकार था लेकिन पिता की प्रेरणा से ज्यों ही इन्हें ऋषिवर का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो जीवन में एक नये युग की शुरूआत हुई। ऋषि के सान्निध्य ने मुन्शीराम के जीवन को जो दिशा प्रदान की, उस दिशा ने मुन्शीराम जी के जीवन के सामाजिक कार्य क्षेत्र में आने की भूमिका तैयार कर दी। पारिवारिक अथवा वैयक्तिक जीवन में ही आपने सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। हम सामाजिक कार्यों में मुन्शीराम जी की इस भागीदारी को भावी श्रद्धानन्द जी के सामाजिक कार्य क्षेत्र में आने की तैयारी कह सकते हैं। मुन्शीराम अथवा महात्मा मुन्शीराम जी ने संन्यास आश्रम ग्रहण करने से पहले १८६० में जालन्धर के अन्दर कन्या विद्यालय की स्थापना, २ मार्च १६०२ को काँगड़ी ग्राम में गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना, अप्रैल के महीने में १६१२ में गुरुकुल कुरुक्षेत्र की स्थापना, १६१३ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना तथा १६१५ में गुरुकुल मटिण्डु की स्थापना कर अपने जीवन के उद्देश्य की रूपरेखा तैयार कर ली थी। १२ अप्रैल सन् १६१७ का दिन केवल महात्मा मुन्शीराम जी के लिए ही नहीं अपितु समस्त आर्य जगत् के लिए ऐतिहासिक व गौरवपूर्ण था जब, महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने नाम और काम (कार्य) की दिशा ही बदल दी। इस दिन उन्होंने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होते हुए पूर्ण रुपेण सामाजिक कार्यों के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया था। इसके लिए आपने अपने घर का और नाम (मुन्शीराम) का त्याग कर स्वामी श्रद्धानन्द नाम अपना लिया था। जो मुन्शीराम अभी तक केवल पारिवारिक और वैयक्तिक उद्देश्यों में बंधे हुए थे, वही (मुन्शीराम) अब संन्यास आश्रम में दीक्षित होकर सामाजिक तथा सार्वजनिक उद्देश्य के रपटीले और पथरीले पथ के पथिक बन गये थे। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना उनके जीवन का आदर्श थी। देश के, प्रदेश के, जाति के, भाषा के, स्त्री के, पुरुष के आधार पर समाज में व्याप्त भेदभाव का आपने डटकर विरोध किया क्योंकि आपका मानना था कि जाति, धर्म एवं साम्प्रदायिकता

thearyasamaj.org

पर आधारित भेदभाव से हमारा समाज चरम उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। संन्यास आश्रम में प्रवेश लेने के बाद स्वामी जी ने जिस गति से सामाजिक कार्यक्षेत्र में अपने कदम मजबूती से आगे बढ़ाये, इस प्रकार के उदाहरण उपन्यासों में तो बहुत मिलते हैं लेकिन वास्तविक जीवन में असम्भव जैसा है। संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के बाद सामाजिक कार्य स्वामी जी के जीवन का अनिवार्य अंग बन गये थे, जिसके परिणामस्वरूप लगता था कि मानो समाज स्वामी जी की और स्वामी जी समाज की पहचान बन गये थे। संन्यास आश्रम में आने के बाद परोपकार के कार्यों में जिस प्रकार स्वामी जी ने अपने आपको समर्पित किया, उससे मानो समाज की स्वामी जी आवश्यकता थे और समाज स्वामी जी की आवश्यकता थी। स्वामी जी ने जिस किसी कार्य को करने का जब संकल्प लिया, उसे पूरा करके ही छोड़ा फिर चाहे वो १८६८ में गुरुकुल की स्थापना करने के लिए ३० हजार की धनराशि इकट्ठा करने की प्रतिज्ञा रही हो अथवा अन्य मिशन। अनेक सत्याग्रहों का सफलतापूर्वक नेतृत्व करना जहाँ उनकी कुशल नेतृत्व क्षमता को दर्शाता है वहीं इससे उनकी देशभक्ति और आत्म विश्वास का परिचय भी मिलता है। इस सन्दर्भ में चाहे ३० मार्च १६१६ का 'रॉलेट एक्ट के विरोध में दिल्ली के घण्टाघर का सत्याग्रह हो चाहे १६१८ में धौलपुर में आर्य समाज मन्दिर का एक भाग गिराये जाने के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हो। साम्प्रदायिक सद्भाव के स्वामी जी प्रबल पक्षपाती थे। इसी के परिणाम-स्वरूप आपने हिन्दू और मुसलमानों के भाई-चारे का सन्देश ४ अप्रैल १६१६ को दिल्ली की ऐतिहासिक जामा मस्जिद से वेद के पावन मन्त्र की व्याख्या करके दिया। २५ मार्च १६२६ को असगरी बेगम का स्वेच्छा से वैदिक धर्म में दीक्षित होना कट्टरवादी मुसलमानों को रास नहीं आया किन्तु इस प्रकरण में भी स्वामी जी ने जिस दृढ़ता का परिचय दिया उससे उनकी निर्भीकता और दृढ़ संकल्प शक्ति स्पष्ट झलकती है। स्वामी जी ने कट्टरवादियों से कहा कि शान्ति देवी (असगरी बेगम) उनकी धर्म की बेटी हैं यदि वह स्वेच्छा से आपके साथ जाना चाहती है, तो उन्हें कोई दिक्कत नहीं है लेकिन बलपूर्वक उसे नहीं ले जा सकते। साररूप में मैं कह सकता हूँ कि जिन स्वामी श्रद्धानन्द जी का २३ दिसम्बर सन् १६२६ को धर्मान्ध के हाथों बलिदान हुआ था, वो श्रद्धानन्द जी तप और त्याग की मूर्ति थे। जो स्वामी श्रद्धानन्द जी शास्त्रार्थ महारथी थे, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी धुन के धनी थे, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी सफल आचार्य थे, जो स्वामी जी कुशल व्यवस्थापक तथा प्रबन्धक थे, जो स्वामी जी भारत माता के सच्चे सपूत थे, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी क्रान्ति के अग्रदूत थे ऐसे महान स्वामी जी का २३ दिसम्बर को हुआ बलिदान हम सब के लिए राष्ट्र भक्ति की, निर्भीकता की, क्रान्ति की राह का राहगीर बनने की, चुनौतियों से दृढ़तापूर्वक जूझने की युगों-युगों तक सतत् प्रेरणा देता रहेगा। किसी कवि ने ठीक ही लिखा है-

समय नदी की धारा है जिसमें सब बह जाते हैं।
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जो इतिहास बनाकर जाते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ऐसे ही महापुरुष थे, जिनका गृहस्थ जीवन, जिनका संन्यासी जीवन समाज को, भक्ति को, शक्ति को युगों-युगों तक प्रेरणा देता रहेगा। आइये, हम सब मिलकर उनके बताए, दिखाए मार्ग पर चलने के लिए प्रयास व पुरुषार्थ करें। यही उनके पवित्र चरणों में सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

thearyasamaj.org

"प्रेरक व्यक्तित्व"

(पं० जगदीश चन्द्र "वसु" पानीपत)

"स जीवति यशो यस्य कीर्त्तिर्यस्य स जीवति" वैदिक धर्म में मानव जीवन के कल्याणार्थ उत्तम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवन जीने की इच्छा व्यक्त की गई है। वास्तव में वह व्यक्ति महान् सौभाग्यशाली होता है, जो अपने वास्तविक जीवन के लक्ष्य को सन्मुख रखकर ईश्वर प्रदत्त सांसारिक पदार्थों का उपभोग करता है। कर्मशील व्यक्ति ही राष्ट्र एवं समाज की सेवा में अग्रगण्य होकर समाज को सही दिशा दिखा सकता है।

आर्य जगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् दार्शनिक चिन्तक साधक सूझ-बूझ के धनी मेरे सहपाठी आचार्य राजबीर जी शास्त्री आज हमारे बीच नही रहे। अपने भौतिक शरीर को त्याग कर ईश्वर व्यवस्था में समा गये। बचपन में हम दोनों हापुड़ के "चण्डी" संस्कृत महाविद्यालय में अध्ययनरत रहे। आपके पूज्य पिता श्री शिवचरण दास आर्य तथा मेरे पिता श्री पं० ब्रह्मानन्द शर्मा वेदपाठी गहरे मित्र थे, यदा-कदा मिलते रहते थे, तथा आर्यसमाज के विशेष कार्यक्रमों में (सम्मेलनों - उत्सवों आदि में) जाते थे। पिता जी से ज्ञात हुआ कि हम इनके कुल पुरोहित भी थे, परिवारों में जो भी कर्म-काण्ड होता था उसमें पिता श्री सम्मिलित होते थे, मेरा भी बचपन में दो बार जाना हुआ।

हम दोनों का आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् कर्म-काण्ड विशेषज्ञ, पूज्य स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती त्रिवेदतीर्थ पुरोहित आर्य समाज-"हापुड़" के साथ सम्पर्क हुआ जो हमें वैदिक आर्य पुरोहित्य का प्रशिक्षण दिया करते थे तथा विवाह संस्कार आदि में दोनों को (मुझे तथा आचार्य श्री राजवीर जी) प्रायः साथ ही रखते थे। पूज्य श्री स्वामी जी की आन्तरिक इच्छा थी कि हम दोनों स्नातक बन कर वैदिक धर्म, आर्य समाज तथा वेदों के विश्वकल्याणी सिद्धान्तों व मान्यताओं के प्रचार-प्रसार में ही समर्पित हों, इन्हीं विचार-धाराओं के आधार पर ही पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने मुझे श्रीमद् दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर (शादीपुर) वीतराग वैदिक विद्वान् पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के सान्निध्य में तथा भ्राता श्री राजबीर जी को आर्ष गुरुकुल झज्जर में प्रवेश करा दिया। परिणामस्वरूप श्री स्व० आचार्य राजवीर जी शास्त्री स्नातक बनकर अन्य अनेक परिक्षायें देकर शिक्षा के प्रचार-प्रसार में तथा आर्य समाज के कार्यों में लग गये, तथा मैं सन् १९५९ से वेद प्रचार के कार्यों में लग गया तथा युवाओं को आर्य वीर दल एवं आर्य कुमार सभा के संगठनों का निर्माण कर हरियाणा, पंजाब, हैदराबाद, महाराष्ट्र, म.प्र., राजस्थान, पूना, मुम्बई आदि प्रान्तों में सार्वदेशिक एवं प्रान्तीय सभाओं के साथ जुड़ कर युवाओं को संस्कारित कर आर्य समाज संगठन के साथ जोड़ा।

आचार्य राजवीर जी एक सुयोग्य व्याकरणाचार्य दर्शनाचार्य व वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ थे, मूक दर्शक, गम्भीर चिन्तक, साधनाशील साफ सुथरा महान् व्यक्तित्व था, अभी कुछ ३-४ वर्ष पूर्व आर्य समाज हापुड़ के प्रधान मान्य श्री सुन्दर लाल जी आर्य के सेवा निवृत्त होने पर विशेष सम्मान समारोह में ज्योति नगर हापुड़ निवास पर सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसमें आचार्य राजवीर जी भी आमन्त्रित विद्वानों में आये हुए थे, देखते ही मुझे गले से लगा लिया और कहने लगे "बसु जी बहुत दिनों में मिले, कहते ही अश्रुधारा बहने लगी, मेरे से भी नहीं रुका गया, मेरी आँखों से भी अश्रुधारा बहने लगी।

ऐसे थे आचार्य राजवीर जी! परम पिता-परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभु! हमें शक्ति सामर्थ्यता दे कि हम उनके बताये वैदिक मार्ग पर चलते हुये उनके अधूरे कार्यों को पूरा कर सकें।"

□□

thearyasamaj.org

स्वयंभू सन्त रामपाल और कानून की लाचारी

(धर्मपाल आर्य)

हरियाणा के अन्दर तथाकथित सन्त रामपाल दास का मामला फिर से चर्चा का विषय बन गया है। इस (तथाकथित सन्त) का विवादों से चोली दामन का सम्बन्ध रहा है। मैं यदि भूल नहीं रहा हूँ, तो देश में ऐसा पहली बार हुआ है कि कोर्ट के आदेशों की इतनी बेशर्मी से किसी ने अवहेलना करने का दुस्साहस किया है। पुनः जब कोर्ट ने पुलिस प्रशासन व सरकार को आदेश दिये कि वो रामपाल को अदालत में पेश करे; आदेश की पालना में जब पुलिस ने रामपाल के गिरेबान तक पहुँचने की कोशिश की तो हजारों की संख्या में इसने अपने अनुयायियों तथा निजी सुरक्षा कर्मियों को बाहर तैनात कर दिया जिससे कि वो गिरफ्तार न हो सके। इस सन्त को गिरफ्तारी का तथा कोर्ट में पेशी का भय क्यों सता रहा है? करौंथा आश्रम को लेने के लिए कोर्ट के आदेश को तो यह सन्त तथा इसके अनुयायी सही और सत्य की जीत होने का ढिंढोरा पीटते फिर रहे थे और जब कोर्ट का आदेश इसकी गिरफ्तारी का आया तो उस (आदेश) में इस तथाकथित सन्त और उसके अनुयायियों को खोट नजर आने लगे। कोई पूछे कि आपकी और आपके अनुयायियों की यह दोहरी मानसिकता क्यों है? इस समूचे प्रकरण में सबसे दुःखद और हैरान कर देने वाला पहलू यह है कि कोर्ट के आदेश को क्रियान्वित कराने में सरकार निहत्थी दिखायी दी। चर्चा यहाँ तक भी है कि पूर्व सरकार का रामपाल दास के कारनामों पर वरदहस्त रहा है अन्यथा करौंथा प्रकरण में बेगुनाहों की हत्या के आरोपी इस तथाकथित सन्त को जेल की सलाखों के पीछे होना चाहिए था। अब जो मामला है रामपाल दास और उसके अनुयायियों द्वारा वकीलों के साथ हुए विवाद का है, जिसमें रामपाल को कई बार अदालत में निजी तौर पर पेश होने का आदेश दिया लेकिन इसने जिस बेशर्मी के साथ कोर्ट के आदेशों की धज्जियाँ उड़ायीं, उसकी मिसाल मिलना कठिन है। अनुयायियों को शासन से टक्कर लेने के लिए मोर्चे पर खड़ा कर दिया, जिससे प्रशासन पर सामाजिक दबाव बनाया जा सके तथा सम्भावित गिरफ्तारी से बचने के लिए सुप्रीम कोर्ट में भी याचिका दाखिल कर दी। इस तरह की पैंतरे बाजी में तो उसने आशाराम को भी पीछे छोड़ दिया। लेख के विस्तार भय को ध्यान में रखते हुए इस (तथाकथित सन्त) के आध्यात्मिक ज्ञान पर तो कोई टिप्पणी नहीं करुँगा लेकिन अपने अनुयायियों का अपने हित में प्रयोग करने की इसकी कला का कोई जवाब नहीं है। जिस आर्य समाज ने इसके पाखण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई, जिस आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द को यह रामपाल अपनी कुत्सित वाणी से अपशब्द कहता रहता था, जिस आर्य समाज के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पर पूर्वाग्रह और दुर्भावना से ग्रसित होकर उलूल-जुलूल और बेतुकी टिप्पणियाँ करता था, जिस आर्य समाज ने इसके पापों के खिलाफ संघर्ष करते-करते अपने कई होनहार नौजवान लुटा दिये, उस आर्यसमाज को तो आज तक न्याय नहीं मिला इसके बावजूद आर्य समाज धैर्यपूर्वक वैदिक प्रचार के अपने अभियान में लगा हुआ है लेकिन धर्म के नाम पर समाज को गुमराह करने वाले इस तथाकथित सन्त ने समूची न्याय व्यवस्था को, सरकार को, पुलिस तन्त्र को जिस तरह ठेंगा दिखाया है उससे कई प्रश्न अनायास खड़े हो जाते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि जिस पर हत्याओं का मामला दर्ज हो, जिसके अनुयायी वकीलों के साथ हाथापाई करने के आरोप में संलिप्त हों। सन्त का नकाब ओढ़ने वाले ऐसे अपराधी प्रकृति के व्यक्ति को कानून को ठेंगा दिखाने का मौका, आश्रम के अन्दर

thearyasamaj.org

हथियारों का जखीरा जमा करने का मौका, प्रशासन की कार्यवाही का सामना करने के लिए निजी सुरक्षाकर्मी, निजी कमाण्डोज तथा आत्मघाती दस्ता तैयार करने का मौका सरकार ने क्यों दिया? प्रशासन की कार्यवाही का रामपाल दास को पहले से सन्देह था जिसका सामना करने के लिए इसने अपनी एक अलग से समानान्तर सेना खड़ी कर ली। क्या इस प्रसंग से समाज में यह सन्देश नहीं गया कि पहले लोगों को धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, झूठा सच्चा उपदेश करो; फिर गुरु का चोला ओढ़कर लोगों में ईश्वर और धर्म के प्रति कम अपने प्रति अधिक, आस्था उत्पन्न करो। न केवल आस्था उत्पन्न करो अपितु किसी मामले में फंसने पर उन (भक्तों) का ढाल के रूप में प्रयोग भी करो। प्रश्न उठता है कि क्या धर्म गुरुओं का यही कार्य है? क्या इन तथाकथित सन्तों के ऐसे अवाञ्छनीय आचरण से हमारी पुरातन आध्यात्मिक विरासत उपहास और निन्दा का पात्र नहीं बनेंगी? जिस आश्रम में आध्यात्मिकता बहनी चाहिए, जो आश्रम ईश्वर भक्ति के व आत्मिक-शक्ति के केन्द माने जाते हैं, जो आश्रम समाज के तीर्थ के रूप में जाने जाते हैं, जो आश्रम समाज को धार्मिक दिशा प्रदान करने के स्थल माने जाते हैं, जो आश्रम शान्ति और सद्भावना का उद्‌गम माने जाते हैं तथा जिन आश्रमों के प्रति समाज के मन में अनन्त श्रद्धा का भाव हो इसके बावजूद किसी आश्रम के सञ्चालक के विरुद्ध हत्या का, अदालत की अवमानना का तथा जबरन भूमि हड़पने का मामला दर्ज होता हो जिसके विरुद्ध एक बार नहीं अपितु दो-दो बार गिरफ्तारी के लिए गैर जमानती वारण्ट जारी होते हों, तीन तीन बार पुलिस को, डी.जी.पी. तथा हरियाणा सरकार को अभियुक्त को निर्धारित अवधि में अदालत में पेश न कर पाने के कारण फटकार सुननी पड़ती हो तथा एक अभियुक्त को पकड़ने के लिए सात-सात दिन लगते हों और करोड़ों रुपये का खर्च होता हो, जब पुलिस पकड़ने जाये तो पुलिस के जवानों का सामना रामपाल दास के जवानों से होता हो, सरकारी कमाण्डोज का सामना रामपाल दास के कमाण्डोज से होता हो, सेना की बन्दूकों का सामना रामदास दास की बन्दूकों से होता हो, प्रशासन की कार्यवाही का सामना रामदाल दास की कार्यवाही से होता हो, पुलिस की गोलियों का सामना रामपाल दास के पैट्रोल बमों से होता हो तथा पुलिस प्रशासन की रणनीति का सामना रामपाल की रणनीति से होता हो तो पाठकगण सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसा आश्रम क्या वस्तुतः आश्रम माना जायेगा या कोई किला और ऐसे आश्रम का सञ्चालक क्या वस्तुतः आध्यात्मिक गुरु अथवा सन्त माना जायेगा या फिर सरकार के विरुद्ध समानान्तर गठित सेना का शातिर सेनापति। इस प्रकार के कथित आश्रम और उनके सञ्चालक समाज को कितना आध्यात्मिक नेतृत्व दे पायेंगे ये अपने आप में एक महत्वपूर्ण सवाल है? आर्य समाज पिछले कई सालों से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि रामपाल दास कोई आध्यात्मिक गुरु या सन्त नहीं है इसकी और इसके आरम की गतिविधियाँ सन्दिग्ध हैं, इनकी जाँच होनी चाहिए लेकिन तब शासन-प्रशासन ने आर्य समाज की सत्य और तथ्याधारित अपील को सिरे से खारिज कर दिया और रामपाल के गिरेबान पर हाथ डालने की हिम्मत नहीं की और न्यायालय के सख्त आदेश के बाद जब शासन ने उसके गिरेबान तक पहुँचने का कुछ साहस जुटाया तब शासन को भी यह बात समझने में देर नहीं लगी कि आर्य समाज जो बातें कई वर्षों से कहता आ रहा है, वस्तुतः सच्चाई उससे भी अधिक है। हरियाणा से मिली खबरों के अनुसार रामपाल दास को पकड़ने के लिए शुरू की गई पुलिस प्रशासन की कार्यवाही रामपालदास की कार्यवाही के सामने कमजोर पड़ रही थी क्योंकि देश में रामपाल दास के प्रति सहानुभूति रखने वालों की संख्या भी अच्छी खासी है यह बात जितनी आश्चर्यजनक है, उससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है। किसी तथाकथित सन्त को पकड़ने के लिए मेरे विचार से १९८४ के आपरेशन ब्लू स्टार

शेष पृष्ठ १६ पर

thearyasamaj.org

आस्था की गुफा में

(इन्द्रजित् देव, यमुना नगर)

द्वारिका पीठ के शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती के २३ जून को दिए इस वक्तव्य पर विवाद उत्पन्न हो गया है कि सत्य साईं बाबा ईश्वर का अवतार नहीं था तथा 'सनातन धर्म' की मान्यतानुसार उसकी पूजा नहीं होनी चाहिए। उनका यह भी कहना है कि साईं बाबा जन्मना मुसलमान था व मांसाहारी भी था। इस बयान से रुष्ट हुए साईं बाबा के कुछ भक्तों ने विभिन्न स्थानों पर शंकराचार्य के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज कराई है। कुछ पत्रिकाओं व दैनिक पत्रों में इस विषय में लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

दैनिक "पञ्जाब केसरी", चण्डीगढ़ (जालन्धर, पालमपुर, हिसार) के २७ जून २०१४ के सम्पादकीय पृष्ठ पर भाजपा के राज्य सभा सदस्य बलबीर पुञ्ज का एक लेख 'किसी की आस्था को तर्क-कुतर्क से दबाया नहीं जा सकता" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है, जिसमें वेद मन्त्रों की गलत व्याख्या देकर 'आस्था' को महिमामण्डित करने का अवाञ्छनीय व असंगत प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है कि उपासना के मार्ग अलग भले ही हों किन्तु मंजिल तो एक ही है। यह फूट को बढ़ावा देने की चिरपरिचित बेतुकी मान्यता है। जब भगवान् पृथक-पृथक् मान लिए जाते हैं, तो उनके उपासकों की मंजिलें भी यत्र-तत्र होंगी ही। राम की कथित उपासना करने वालों की मंजिल अयोध्या ही होगी क्योंकि उनका उपास्य राम अयोध्या में ही रहता है। कृष्ण को ईश्वर मानकर उसकी उपासना करने वालों की मंजिल मथुरा है। शिव के भक्तों से पूछिए कि तुम्हारा भगवान कहाँ रहता है तो उनका उत्तर होगा- शिवजी का निवास कैलाश पर्वत पर है। तात्पर्य यह हुआ कि उनकी मंजिल कैलाश पर्वत है। इसी प्रकार विष्णु का निवास क्षीर सागर में है तथा उनके भक्तों की मंजिल क्षीर-सागर होगी। ब्रह्मकुमारियों से पूछिए तो वे बताएंगी कि उनका भगवान गोलोक में वास करता है। ईसाइयों का गॉड चौथे आसमान पर रहता है तो उनका उपास्य जहाँ रहता है अर्थात् चौथे आसमान पर ही उनकी मंजिल है। मुसलमानों का उपास्य खुदा सातवें आसमान पर रहता है तो सातवें आसमान से इतर उनकी मंजिल नहीं हो सकती।

पृथक्-पृथक् भगवान् जब मानेंगे तो उपासना के मार्ग व मंजिलें भी पृथक्-पृथक् ही होंगी। बलबीर पुंज अनेक ईश्वरों की सत्ता सिद्ध करने के लिए ऋग्वेद के इस मन्त्रांश का हवाला देते हैं- ''एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'' में उनका यह प्रयास मंत्र का ठीक अर्थ न समझने-मानने के कारण है। मंत्र यह. कहता है कि ईश्वर है तो एक ही परन्तु उसके अनेक कर्म व गुण हैं तथा जीवों के साथ अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं। वह सर्वव्यापक है, इसलिए उसे विष्णु कहा जाता है। वह कल्याणकारी है, अतः उसे शिव नाम से भी पुकारा जाता है। वह गण (समूह) का पति अर्थात् रक्षक है। इस कारण से उसे गणपति भी कह दें तो सत्य की हानि नहीं होगी। परन्तु है तो वह एक ही। कृष्ण का मुख्य नाम कृष्ण है परन्तु उन्हें गीता में कई नामों से अभिहित किया गया है। इनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं- हृषिकेश, वार्ष्णेय, जनार्दन, महात्मन्, मधुसूदन, अरिसूदन, माधव, वासुदेव, अच्युत, पार्थसारथि व केशव आदि। अर्जुन के भी कई नाम गीता में आए हैं। उनमें से कुछ ये हैं- भारत, कौन्तेय, परंतप, धनंजय, पाण्डव, अनघ, सव्यसाची, कुरुप्रवीर, कुरुनन्दन, कुरुश्रेष्ठ, गुडाकेश, महाबाहो व पार्थ इत्यादि। यदि गीता में अनेक नामों से पुकारे गए कृष्ण एक ही महापुरुष थे, तो वेदों में ईश्वर के लिए अनेक नामों को एक ही ईश्वर के नाम से क्यों नहीं

thearyasamaj.org

स्वीकारा जाता? शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपति, गणेश, सरस्वती, इन्द्र, यम व प्रजापति इत्यादि पृथक्-पृथक् ईश्वर या देवता क्यों खड़े कर लिए गए? वेदों में नाम भिन्न-भिन्न आए हैं तो एक ही ईश का कार्य भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए आए हैं। तर्कहीनों ने ईश्वर के स्वरूप भी अनेक बना लिए हैं। एक का ईश्वर दो हाथ का है, दूसरे का चार हाथ वाला है तीसरे का ईश्वर आठ हाथ वाला है। एक का ईश धनुर्धारी है तो दूसरे का बांसुरीवाला। यह स्वरूप में भिन्नता है। ईश्वर के स्वरूपों में भिन्नता हो गई तो वह ईश्वर एक कहाँ रहा? 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' का सही व संगत अर्थ समझा व माना जाता तो यह भिन्नता न होती, अनेकता न होती।

तर्क को हेय व आस्था को ग्राह्य व उत्कृष्ट मानने वाले बलबीर पुंज से हमारा निवेदन है कि वेद के मन्त्र के मनचाहे अर्थ करके सत्य को बचाया नहीं जा सकता। सत्य की खोज में तर्क परम सहायक है। सत्य का दूसरा नाम धर्म है। धर्म को जानना तथा तदनुसार आचरण करना ही व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए हितकर है। महाभारत में व्यास जी ने लिखा है-

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" अर्थात् धर्म के मर जाने से मनुष्य की आध्यात्मिक मृत्यु होती है तथा धर्म की रक्षा करने से ही मनुष्य की आध्यात्मिक रक्षा होती है। मनु महाराज के ये शब्द भी स्मरणीय हैं-

आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते सः धर्मं वेद नेतरः।।

मनुस्मृति १२/१०६

अर्थात् जो मनुष्य वेद और सृष्टिविहित धर्मोपदेश अर्थात् धर्मशास्त्र का वेदशास्त्र के अनुकूल तर्क के द्वारा अनुसन्धान करता है, वही धर्म के तत्व को समझ पाता है, अन्य नहीं। संसार में जब भी उन्नति हुई है, तर्क व ज्ञान द्वारा हुई है। यूरोप का इतिहास इस बात की गवाही देता है। स्वर्ग के लिए धन लेकर पोप प्रमाण-पत्र बेचते थे, जिसे इण्डलजेन्सेज़ कहा जाता था। जो लोग पाप करते थे, वे पोप से माफीनामा खरीद कर यह समझते थे कि वे पाप मुक्त हो गए। मार्टिन लूथर (१४८३-१५८६) ने ९५ युक्तियों का एक परिपत्र जारी किया व लोगों को पोपों द्वारा आस्था के नाम पर फैलाये पाखण्ड से मुक्ति दिलाई। बाइबिल में लिखा है कि धरती चपटी है व सूर्य धरती के गिर्द घूमता है। सन् १६१० में स्वतन्त्र विचारक गैलिलियो ने इसे चुनौती दी व कहा कि तर्क व विज्ञान के आधार पर सत्य यह है कि पृथिवी घूमती है व गोल है। ब्रूनो (१५४२-१६००) का कहना था कि पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है। ईसाइयों को बाइबिल के प्रति आस्था थी व उसके अनुसार यह मानते थे कि पृथिवी के गिर्द सूर्य घूमता है, न कि पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है। इस विचार पर दृढ़ रहे पोपों द्वारा ब्रूनो को कहा गया कि वह अपने विचार बदल ले परन्तु उसने ऐसा नहीं किया तो उसे जीवित जला दिया गया। इंग्लैंड में पादरी लैटीमार को भी सन् १५५५ में जिन्दा अग्नि को भेंट कर दिया। गैलिलियो को जेल में डाल दिया गया। हाई पेशिया को बाइबिल का विरोध करने के आरोप में आग में जला दिया गया। एक और देवी जोन आफ आर्क के प्रचार को रोकने के लिए उसे जादूगरनी घोषित करके अग्नि में बलात् डालकर भस्मीभूत किया। आज जर्मनी में मार्टिन लूथर की एक भव्य मूर्ति लगी है और वहाँ उसके विचारों को आदर से ग्रहण किया जा रहा है। यूरोप व अमरीका आज वैज्ञानिक व भोतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नति को प्राप्त कर चुके महाद्वीपों के रूप में सर्वमान्य बन चुके हैं। जब तक ये 'आस्था', अन्धविश्वासों अथवा पाखण्डों के घेरे में रहे, तब तक उन्नति का सूर्य वहाँ नहीं चमका था। आज स्थिति बदली हुई है। विज्ञान, सत्य, तर्क व पुरुषार्थ का सुफल मिलता ही है। पूवोक्त बलिदानियों के बलिदानों को वही महत्वहीन कहते हैं, जिनको तर्क व प्रमाण से एलर्जी है व सत्य सिद्धान्त की बात मानना तो दूर, सुनना भी नहीं चाहते। ऐसे लोग 'आस्था' की गुफा में बन्द रहते

thearyasamaj.org

हैं। बाहर क्या है, इससे उनका कोई मतलब नहीं रहता। जो तर्क नहीं करता, वह मूर्ख है, साहसहीन है, दब्बू है। जो तर्क करता है, वह पुरुषार्थी है, सत्यप्रेमी है, ज्ञानी है। जो तर्क सुनता नहीं, वह स्वार्थी है, दुराग्रही है, अज्ञानी है। जो तर्क की रक्षा करता है, वह परोपकारी है, साहसी है, दब्बू नहीं। तर्क से अभिप्राय है- प्रमाणों के अनुसार सत्य का निश्चय करना। जब तक वादी-प्रतिवादी होकर वाद न किया जाए, तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। इसीलिए लोकोक्ति बनी-"वादे-वादे तत्वबोधः।"

आस्था का अर्थ शब्दकोश के अनुसार श्रद्धा है व श्रद्धा=श्रत् + धा अर्थात् सत्य को धारण करना। इस आधार पर राज्य सभा सदस्य बलबीर पुञ्ज से हम पूछते हैं कि :

पौराणिकों की आस्थानुसार हनुमान बन्दर थे परन्तु उनके द्वारा मान्यताप्राप्त हनुमान चालीसा की यह पंक्ति "हाथ वज्र औ ध्वजा विराजे कान्धे मूंज जनेऊ साजे" तो कहती है कि हनुमान मूंज का जनेऊ पहनते थे। क्या बन्दर जनेऊ पहनते थे या पहनते हैं? सीता की खोज में लंका में जाकर वे इधर-उधर घूमते रहे। सीता से भेंट होने से पूर्व एक विचार उनके मन में वानप्रस्थ ग्रहण करने का भी आया था-

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीभितः।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्।।
- वाल्मीकि रामायण सुन्दर कांडम्।

इसके अतिरिक्त हनुमान ने स्वयं को पवन देव का औरस पुत्र स्वीकार किया था- "अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः"- वा.रा.सुंदरकांडम् त्र्यस्त्रिंशः सर्गः

हमें आप बताइए कि वानप्रस्थी कौन बनते हैं? मनुष्य या बन्दर? क्या बन्दरों के औरस पुत्र होते हैं? इन एतिहासिक प्रमाणों के आधार पर सत्य यह है कि हनुमान् जी मनुष्य ही थे परन्तु लोगों की 'आस्था' के अनुसार वे बन्दर थे। आप सत्य विरोधी आस्था का खण्डन करेंगे?

२. अभी कुछ दिन पूर्व एक संन्यासी ने बयान दिया है कि धर्म के ठेकेदार सिद्ध करें कि श्री राम व श्री कृष्ण भगवान थे। इस पर स्वयंभू केन्द्रीय सनातन धर्म सभा के एक कथित प्रधान ने माँग कर दी है कि इन संन्यासी को गिरफ्तार किया जाए। यह माँग यही बताती है कि पौराणिकों के पास अपनी मान्यताओं को सही सिद्ध करने का कोई तर्क, प्रमाण व युक्ति उपलब्ध नहीं है तथा सारी मान्यताएँ अन्धविश्वासों पर टिकी हैं, जिन्हें वे 'आस्था' का नाम देते हैं। किसी महापुरुष के विषय में जिज्ञासा प्रकट करना संविधान की किस धारा के अधीन अपराध है? इन्टरनैट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार अफ़गानिस्तान का मिण्डारी बहरुद्दीन नामक एक व्यक्ति अहमदाबाद में आकर एक वेश्या के यहाँ रहा था। वहीं चान्द मियां नामक पुत्र जन्मा था, जो मांसाहारी रहा। इसी मुसलमान पुत्र को हजारों अन्धविश्वासी हिन्दू सत्य साईं बाबा कहते व पूजते हैं इस कथित भगवान् ने देश, धर्म व जाति के लिए कोई त्याग व बलिदान नहीं दिया, न ही देश या समाज की किसी समस्या का समाधान ही किया परन्तु अन्ध-विश्वासी लोग उसे महापुरुष तो क्या, ईश्वर मानकर उसकी पूजा करते हैं व उसे "ॐ साईं राम" नाम से याद करते हैं। शंकराचार्य स्वरूपानन्द ने ये सारी पोल खोल कर देश को जागरूक व सावधान रहने को कहा है, तो क्या अपराध किया है? साईं बाबा के भक्त उनके विरुद्ध मुकद्दमा दायर कर रहे हैं तथा उन्हें धमकियाँ दे रहे हैं। ये लोग तथ्य व सत्य के विरोधी हैं व आरोपों के उत्तर देने की बजाए 'आस्था' की गुफा में बन्द रहना चाहते हैं। इन्हें याद रखना चाहिए कि गुफा में अन्धकार ही अन्धकार है, जिसके रहते ताज़ी वायु व प्रकाश उन्हें नहीं मिल सकता। इस गुफ़ा के बाहर खड़ा सत्य इन्हें बाहर निकलकर प्रकाश व वायु का लाभ लेने की प्रार्थना कर रहा है। तर्क इनकी गुफा का द्वार खटखटा रहे हैं व प्रमाण इन्हें शास्त्रार्थ करने की चुनौती दे रहे हैं। समाजहित इन्हें अनुरोध कर रहा है कि वे अपनी 'आस्था' को राष्ट्र की भावनात्मक एकता व सैद्धान्तिक निष्ठा के आगे समर्पित कर दें। ❑❑

thearyasamaj.org

छान्दोग्य में शरीर में देवता

(उत्तरा नेरुर्कर, बंग्लौर, चलभाष : ०९९८४५०५९३१०)

छान्दोग्य उपनिषद् एक लम्बा उपनिषद् है, जिसमें अनेकों आख्यायिकाएँ हैं। इनमें से कई बृहदारण्यक उपनिषद् में और शतपथ ब्राह्मण में वैसी की वैसी, या कुछ भेद के साथ, मिलती हैं। इससे उपनिषद रोचक तो हो जाता है, परन्तु इनमें से कई आख्यायिकाओं के सही अर्थ अब उपलब्ध नहीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है। उनमें कुछ गूढ़ रहस्य छिपा है, इससे उनमें और भी कौतुहल उत्पन्न होता है। इनमें से एक है- शरीर में देवताओं का तीन-तीन में बंटकर वास करना। यह प्रकरण प्रपाठक ६, खण्ड ५-७ में आता है। इसके तथ्य की अवश्य ही खोज करनी चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। इसकी विषय-वस्तु और उसपर अपने कुछ विचार मैं इस लेख में दे रही हूँ।

पहले तो छान्दोग्य ने तीन देवताओं को ब्रह्माण्ड, और विशेषतः शरीर, की सृष्टि में मुख्य माना है। ये हैं- तेज, जल और अन्न। अन्न पृथिवी-तत्त्व का ही पर्यायवाची है। सो, आकाश और वायु को इतनी अधिक प्राथमिकता न देते हुए, पञ्च तत्वों में से तेज, जल और पृथिवी विकारों को अधिक महत्त्व दिया गया है।

उपरोक्त स्थल पर पिता उद्दालक आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश देने का प्रकरण है। उसमें वे बताते हैं कि ये तीन देवता कैसे शरीर को बनाने में तीन-तीन रूप धारण करते हैं। इसमें वे दही को बिलोने की उपमा देते हैं, जिससे उसके तीन भाग हो जाते हैं- ऊपर तैरने वाली हल्की मलाई या घी, मध्य में रहने वाला जल या छाछ और नीचे बैठ जाने जाने वाला मक्खन। सो, तेज, जल और अन्न के भी वे तीन-तीन भाग बताते हैं इनका वर्णन इस प्रकार है।

उद्दालक कहते हैं कि हम जो अन्न खाते हैं, उसका स्तूलतम भाग मल बनता है, जिसे शरीर त्याग देता है। जो मध्यम अंश होता है वह मांस बन जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग होता है, वह मन का अंश बन जाता है। **(अन्नमशितं त्रेधा विधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति। यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः।। छा० ६/५/१)**। यहाँ मल और मांस का बनना तो अत्यन्त स्पष्ट है- भोजन का fibre और अन्य अवांछित अंश मल बनते हैं। इनको अन्न का स्थूलतम भाग अवश्य कहा जा सकता है। बाकी अन्न आँतों में से रक्त में घुल जाता है और सारे शरीर में जाकर मांस बनाता है, ऊर्जा देता है। मन के विषय में यह पाया गया है कि मस्तिष्क की रक्त धमनियाँ बाकी शरीर से कुछ भिन्न होती हैं। वे केवल रक्त का बहुत सूक्ष्म अंश ही मस्तिष्क तक पहुँचने देती हैं। इस प्रकार मन-मस्तिष्क को पहुँचने वाले अंश को सूक्ष्मतम भाग अवश्य कह सकते हैं। सो, इस विषय में छान्दोग्य का कथन पूर्णतया प्रमाणित हो जाता है।

आगे उद्दालक बताते हैं कि जो जल हम पीते हैं, उसका स्थूलतम भाग मूत्र बनता है; जो मध्यम भाग है, वह रक्त में परिवर्तित होता है; और सूक्ष्मतम भाग प्राण बन जाता है। **(आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते। तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति। यो मध्यमस्तल्लोहितम् योऽणिष्ठः स प्राणः।। छा० ६/४/२)**। इस विषय में विज्ञान कहता है कि गुर्दों से पीये हुए जल की अशुद्धियाँ, शरीर की आवश्यकता से अधिक जल के साथ, मूत्र में चली जाती हैं, जबकि

thearyasamaj.org

शुद्ध जल रक्त का भाग बन जाता है। सो, हम पहले दो भाग तो समझ सकते हैं, परन्तु जल का कौन सा भाग प्राण कैसे बना?- यह प्रश्न शेष रह जाता है। आधुनिक विज्ञान जल और प्राण में कोई सम्बन्ध नहीं बताता।

तेज का विषय और भी रहस्यात्मक हो जाता है। उद्दालक कहते हैं- जो घी, तेल, आदि तेजयुक्त भोजन खाया जाता है, उसके तीन भाग इस प्रकार होते हैं- उसका स्थूलतम भाग अस्थि बनता है, मध्यम भाग मज्जा बनता है, सूक्ष्मतम भाग वाणी बनती है **(तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते। तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति। यो मध्यमः स मज्जा। योऽणिष्ठः सा वाक्।। छा० ६/४/३)**। विज्ञान के अनुसार अस्थि भोजन में उपलब्ध कैल्शियम से बनती है, जो कि रक्त द्वारा उसको पहुँचाया जाता है। कैल्शियम पालक आदि से भी उतना ही गृहण होता है, जितना कि घी, बादाम, आदि से। और मज्जा भी रक्त से बनती है। तथा वाणी ऊर्जा से उत्पन्न हुई कही जा सकती है। घी में उपलब्ध कैल्शियम बहुत कम होता है। हां, दूध, तिल, आदि में अधिक होता है। परन्तु हरी पत्तियों वाले सागों में और अधिक होता है। घी में एक विटामिन मिलता है- K,, - जिससे अस्थि में कैल्शियम अधिक संग्रहीत होता है। परन्तु अन्य तेलों, बादाम आदि में यह नहीं मिलता। विटामिन को तेज मानना तो उपयुक्त नहीं लगता और कैल्शियम आदि धातुएँ तो पृथिवी तत्त्व में ही गिनी जा सकती हैं, तेज में नहीं। वाणी का तो तेज से कोई सम्बन्ध ही नहीं समझ में आता। इस प्रकार, तेज से अस्थि, मज्जा और विशेष रूप से वाणी का उत्पन्न होना रहस्यमय है!

अन्ततः, उद्दालक कहते हैं- **"अन्नमयं हि सोम्य! मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति...।। छा०** ६/५/४।। हे प्रिय पुत्र! (इस प्रकार) मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है। और कहते हैं कि जिस प्रकार दही के मथे जाने पर उसका सूक्ष्म भाग ऊपर तैर आता है, उसी प्रकार अन्न, जल और तेज के सेवन किये जाने पर उनका सूक्ष्म भाग क्रमशः मन, प्राण और वाणी को प्राप्त होते हैं (छा० ६/६)।

मन आदि के इस गुण को वे एक प्रयोग से सिद्ध करते हैं (छा० ६/७)। वे श्वेतकेतु को आज्ञा देते हैं कि तू पन्द्रह दिन भोजन मत कर, केवल इच्छानुसार जल पी। श्वेतकेतु ऐसा ही करता है। तब पिता उससे पूछते हैं कि मुझे वेद का कोई अंश सुना, जो तुझे याद आ रहा हो। तो श्वेतकेतु कहता है कि इस समय तो मेरे मन में कुछ भी नहीं आ रहा है। तब उन्होंने बेटे को भोजन करने का आदेश दिया। भोजन के बाद जब उन्होंने बेटे से कुछ प्रश्न पूछे, तो बेटे ने सहजता से सब के उत्तर दे दिए। तब उन्होंने श्वेतकेतु को शिक्षा दी—क्योंकि प्राण जलमय होता है, इसलिए तुम्हारे प्राण बचे रहे, परन्तु मन के अन्नमय होने के कारण, भोजन न करने पर, उसका व्यापार बन्द हो गया। तेज की कमी से, बोलने में भी कठिनाई होने लगी, इसे अनकही बात समझना चाहिए। यह प्रयोग तो हमारे अनुभव से भी प्रमाणित है- जब हम उपवास करते हैं तो प्राण तो चलते रहते हैं, परन्तु अन्य शारीरिक कर्म हल्के पड़ जाते हैं। तथापि हमें प्राण और जल का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता...

इसी प्रसंग में, उद्दालक ने जीव को सोलह कलाओं वाला भी बताया है। **(षोडशकलः सोम्य। पुरुषः।। छा० ६/७/१)**। प्रश्नोपनिषद् से हमको जान पड़ता है कि ये सोलह कलाएँ इस प्रकार हैं- प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम **(स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धां**

thearyasamaj.org

खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।। प्रश्नोपनिषद् ६/४।।) उद्दालक यहाँ बताते हैं कि भोजन न करने के कारण, श्वेतकेतु की जलरूपी केवल एक कला रह गई थी, अर्थात् अन्य कलाएँ क्षीण पड़ गई थीं। इस कारण उसकी मन-कला ने काम बन्द कर दिया और उसे उद्दालक के प्रश्न का उत्तर नहीं सूझा। प्रसंग को और गहराई से देखें तो श्वेतकेतु की केवल एक जलरूपी कला कैसे शेष रही? उद्दालक स्वयं मानते है कि, जल के साथ-साथ, प्राण-कला भी श्वेतकेतु में अवश्य वर्तमान थी। इससे ज्ञात होता है कि वे जल और प्राण को यहाँ एक ही मूल के दो रूप मान रहे हैं, जो दो पृथक् कलाओं के रूप में दीखता है। तब फिर मन और अन्न, व तेज और वाक्- नाम-कला (देखिए मेरा लेख 'सृष्टि में नाम और रूप का महत्त्व') कलाएँ भी मूल में एक ही हैं, यह निष्कर्ष भी हम इस उपदेश से निकाल सकते हैं।

अब, जल आदि का प्राण आदि से सम्बन्ध प्रत्यक्ष में न दिखने के कारण, हम उद्दालक के वचन को आलंकारिक मानकर, पूर्णतया सत्य नहीं- ऐसा मान सकते हैं। परन्तु, हमने ऊपर देखा कि उनके उपदेश का करीब आधा भाग आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रमाणित है। आधे को सही जानकर, हम बाकी आधे को कैसे त्याग दें? उसे न समझना हमें अपनी अज्ञानता ही माननी पड़ेगी।

वास्तव में, हमें इन विषयों को, संकेतमात्र न मानकर, अपितु सत्य मानकर, उनको वैज्ञानिक रीति से परखना चाहिए। फिर यदि वे खरे न उतरें, तो उन्हें अवश्य त्याग देना चाहिए। ये किस रूप में सच है, यह समझने से हमारे ज्ञान में कितना विकास होगा, यह हम सहजता से समझ सकते हैं। उपनिषद् के वचन हमें एक गूढ़ सत्य से परिचित करा रहे हैं। उसको पूर्णतया प्राप्त करना, समझना हमारा कर्त्तव्य है।

❑❑

पृष्ठ १० का शेष

की कार्यवाही को छोड़ दें तो यह अब तक का सबसे बड़ा ऑपरेशन रहा होगा। अब देखना यह कि सरकार और माननीय न्यायालय रामपाल दास के पकड़े जाने पर क्या व्यवहार व नीति अपनाते हैं? यदि ठोस निर्णय व नीति अपनायी जाती है तो इस तरह की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सकेगा तथा आशा की जा सकेगी कि भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी; यदि मामले पर केवल लीपापोती कर दी गयी तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि फिर हालत बेकाबू हो जायेंगे। सन्तोष की बात ये है कि पर्याप्त सबूत मिलने के पश्चात् सरकार ने इसके खिलाफ देशद्रोह का मुकदमा दर्ज करा दिया है। अब पुलिस द्वारा इस स्वयंभू महाराज पर पूरी तरह कानूनी शिकंजा कसा जा चुका है। तीसरी बार ७ दिन के रिमाण्ड पर लिया गया है। मुझे उम्मीद है कि इस रामपाल दास के पकड़े जाने से आर्य समाज को न्याय मिलने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा और एक धूर्त, पाखण्डी की धूर्तता और पाखण्ड के साम्राज्य का सदा-सदा के लिए अन्त हो जायेगा। भगवान उन भोले-भाले लोगों को सद्बुद्धि व सत्प्रेरणा प्रदान करे, जिनकी सहानुभूति का यह पात्र बना हुआ है तथा कानून के शिकञ्जे से अपने आपको बचाने के लिए मासूम बच्चों, युवकों, माताओं और बहिनों का ढाल के रूप में प्रयोग कर रहा है। जब-जब रामपालदास जैसे धूर्त हमारी आध्यात्मिक विरासत के अगुआ बनेंगे, तब-तब हमारा समाज, हमारी सरकार, हमारे न्यायालय उपरोक्त चुनौतियों से दो-चार होते रहेंगे, आओ, हम सब मिलकर इन पाखण्ड और पाखण्डियों का न केवल सामना करें अपितु समाज को इस प्रकार की समस्याओं से जूझने के लिए जागृति भी पैदा करें।

❑❑

thearyasamaj.org

ईश्वर का भय
(श्री स्व० स्वामी दर्शनानन्द जी के प्रवचन के आधार पर)

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
सेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
यजु०अ० ४० म० १

अर्थ- हे जीव! यह सम्पूर्ण संसार जो दृष्टिगोचर हो रहा है या उसके जो भिन्न-भिन्न अवयव दिखाई देते हैं, ये सब ईश्वर के निवास स्थान हैं जो मनुष्य परमात्मा की आज्ञाओं को भूल जाते हैं, वे दुःखों को भोगते हैं, इसलिये तू किसी का धन लेने की इच्छा मत कर। यह कैसा उत्तम उपदेश है, जिसके समझने से मनुष्य सर्वदा पापों से बचकर सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य में डरने की स्वाभाविक टेव है। जब मनुष्य कोई पाप करने लगता है, तो उस समय उसके चित्त में भय उत्पन्न होता है और वह उस पाप को छिपा कर करने का प्रयत्न करता है। कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जिसके हृदय में पाप करते समय भय न उपजता हो। इसी भय के कारण वह घर के भीतर जाकर, किवाड़ बन्द करके और द्वार पर सहयोगियों को खड़ा करके पाप करता है। यदि मनुष्य को यह ज्ञान होता, कि मैं पाप करके किसी प्रकार भी दण्ड से नहीं बच सकता, तो वह कदापि पाप न करता, परन्तु मनुष्यों के हृदय में धार्मिक शिक्षा न होने के कारण उनको परमात्मा की सत्ता एवं सर्व-व्यापकता का ज्ञान तो होता ही नहीं, इससे वे परमात्मा से न डरकर केवल मनुष्यों के भय से बचने का प्रयत्न करते हैं। वर्तमान समय में सबसे प्रथम तो मानुषिक भय गवर्नमेंट का है। वे जिसको इस प्रकार निवृत्त कर लेते हैं, कि इस बन्द घर में कोई देखता ही नहीं है। यदि कोई मनुष्य देख भी लेगा और वँह गवनैमेंट का कर्मचारी होगा, तो उसे कुछ घूस दे दी जायेगी। इससे भी काम न चलेगा, तो झूठे साक्षी उपस्थित कर दिये जायेंगे, जिनसे कि न्यायालय से अवश्यमेव छुटकारा हो जायेगा। यदि इसमें भी सफलता न हुई, तो वकील करके मुकदमे को कानूनी कमजोरियों (राजकीय नियमों की त्रुटियों) से जीत जाऊँगा और यदि इन बातों से भी काम न चला, तो न्यायाधीशों को पूरी घूस देकर बच जाऊँगा। यह विचार हैं, जिनके कारण मनुष्य गवर्नमेंट का भय होते हुए भी पाप करना नहीं छोड़ते। दूसरा भय जाति का है, वह तो आजकल जाता ही रहा। जिसका कारण यह है कि जाति में ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े देखने में आयेंगे जो स्वयं किसी-न-किसी पाप के अपराधी न हों। जब कोई मनुष्य किसी पापी को जाति-सभा के समक्ष में उपस्थित करने लगता है, तो यह विचार तुरन्त ही उसके मन में आ पहुँचता है कि यह भी मेरे दोष अवश्य प्रकट करेगा बस? वह अपने विचार को छोड़ देता है। तीसरा भय लोक लाज का है, तो इसका तो आजकल चिन्ह भी नहीं दिखाई देता। जब देश की यह दशा है, तो पापों का बढ़ना आवश्यक ही है। जब पाप अधिक होने लगेगा तो दुर्भिक्ष, प्लेग, भूकम्प तथा लड़ाई-झगड़े आपत्तियों का आना अत्यावश्यकीय है, जिसका उपचार (इलाज) किसी मनुष्य के हाथ में नहीं, न गवर्नमेंट इसको रोक सकती है और न जाति ही उसकी कोई रोकथाम कर सकती है, ऐसी अवस्था में मस्तिष्क पर धार्मिक शिक्षा का प्रभाव किये बिना मनुष्यों का पापों को छोड़ना बहुत कठिन है। प्राचीन काल में जब मनुष्य ईश्वर से डरते थे, तो उस समय संसार में पाप बहुत ही थोड़ा दिखाई देता था, परन्तु जब से वेदों की शिक्षा बन्द हो गई और जनता या तो नास्तिक हो गई या ईश्वर को एक-देशी मानने लगी, तो उनको पाप करते समय ईश्वर का भय न रहा। वेदों की पवित्र शिक्षा के समय में पाप करना अति दुष्कर जान पड़ता था, क्योंकि जब मनुष्य यह

thearyasamaj.org

जानता है कि मेरे पापों का दण्ड देने वाला मेरे सम्मुख विद्यमान है, जिसको मैं किसी प्रकार की घूस से प्रसन्न नहीं कर सकता। न झूठे साक्षियों से छुटकारा होगा, क्योंकि वह स्वयं देख रहा है, न वकील से काम चलेगा, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, अतः वह किसी प्रकार धोखे में नहीं आ सकता है। न उसके राज्य से भाग कर कहीं जाया जा सकता है। अतः वह इससे भयभीत हो तुरन्त पापों को छोड़ देता है, परन्तु ईश्वर को नहीं मानना एक ऐसी बुराई है, जो मनुष्य को साहस दिलाती है और जिसके कारण वह पाप से नहीं बचता। वह जानता है कि जब पुलिस पकड़ने आवेगी, तो उसके मुकाबले में सफलता की आशा है। बहुधा राजा, महाराजा और नवाब आदिक तो अपने को पुलिस के भय से रहित ही समझते हैं। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जावे कि जिस शक्ति के हाथ में मेरे पापों का फल देना है, वह इतना बलशाली है कि संसार के बड़े-से-बड़े महाराजा, लाखों सेना, हाथी, घोड़े, खड्ग, भुशुण्डी (बन्दूक) तोप और डिनामेट के गोले आदि रखते हुये भी उसके वारेन्ट मौत (मृत्यु-संदेश) को एक मिनिट के लिए भी कोई नहीं रोक सकता, क्योंकि यह समस्त अस्त्र-शस्त्रादि तो बाह्य-आक्रमण के रोकने के निमित्त हैं, परन्तु पापों का दण्ड देनेवाली शक्ति तो भीतर विद्यमान है। कितना ही बड़ा दुर्ग बना लिया जाय, वह केवल बाह्य शक्तियों से बचाने के लिए लाभकारी होगा, आन्तरिक शक्ति से बचाने के लिए तो वह बिल्कुल निकम्मा है। जितने सहायक हों, वे भी देह-धारियों से बचा सकते हैं, परन्तु देह-रहित निराकार ईश्वर पर इनका कोई प्रयोग नहीं हो सकता है। जितने शस्त्रास्त्र हैं, वे सब भी देह-धारी पर ही चलाये जा सकते हैं।

जिस शक्ति से पाप करके हम किसी प्रकार नहीं बच सकते और न कोई साँसारिक साधन उसको रोक सकते हैं, ऐसी शक्ति से विमुख होना मानो अपने को दुःख के समुद्र में डुबोना है। मनुष्य दुःख का कारण जानकर किसी काम को नहीं करता। उसकी इच्छा तो सुख प्राप्त करने एवं दुःख से बचने की है, अतः वह पाप को दुःख का कारण जानते हुए कभी नहीं कर सकता। यदि संसार में दुःख से बचानेवाली कोई शक्ति है- तो वह ईश्वर का भय है, जिसका दृढ़ विश्वास होना चाहिये। यदि मनुष्य को यह विश्वास हो जावे, कि ईश्वर, संसार के प्रत्येक खण्ड में विद्यमान है, मेरे भीतर भी है, मैं किसी प्रकार उसकी दृष्टि से अपने पापों को नहीं छिपा सकता हूँ और न ईश्वर का पुत्र मुझे पाप करने पर दण्ड से बचा सकता है और न किसी की शफाअत (सुफारिश) से पापों से बचना हो सकता है और न किसी प्रकार के छापे तिलक तथा भेष-धारण करके पापों के फल से बच सकता हूँ, तो वह कभी पाप न करेगा, जितने मतमतान्तर हैं, ये सब पाप बढ़ने के कारण हैं, क्योंकि ये ईश्वर को एकदेशी मानते हैं, जिससे मनुष्य के हृदय में उसका भय तनिक भी नहीं रहता है।

कतिपय मनुष्य तो यह विचार लेते हैं, कि पाप करके "तोबा" कर लेंगे, तो परमात्मा हमारे पापों को क्षमा कर देगा परन्तु जब तनिक "तोबा" करने से ही पाप क्षमा हो जायेंगे, तो पापों से कोई क्यों बचेगा। किसी ने कहा कि पापों का भार मसीह उठाकर ले गया। भला? फिर ईसाई पाप करने से क्यों बचेंगे। किसी ने समझा कि गंगा स्नान से मुक्ति होगी और सहस्रों जन्म के पाप छूट जायेंगे। अब बताइए यह मानने वाला पाप से क्या डरेगा? आज कल तो गंगा जाने के लिए दो तीन रुपये से अधिक की आवश्यता ही नहीं है। बस? जब तीन रुपये में ही पाप छूटने लगे तो फिर धनी क्यों पाप से डरेंगे। इस प्रकार इन मतमतान्तर वालों ने ईश्वर को एकदेशी मान कर उसको साँसारिक गवनमेंट की भाँति पापों के हटाने में अशक्त बना दिया है।

बहुधा मनुष्य कहेंगे कि हम तो ईश्वर को एकदेशी नहीं मानते, परन्तु उनसे पूछें कि जब तुम्हारा ईश्वर एकदेशी ही नहीं, तो फिर उसके पैगम्बर (दूत) किस

thearyasamaj.org

प्रकार हो सकते हैं, क्योंकि पैगम्बर का अर्थ पैगाम (संदेशा) लाने वाले के हैं और पैगाम सर्वदा दूर से आया करता है। दूरी सर्वदा एकदेशी पदार्थों के बीच में होती है। बस? पैगम्बर मानना ईश्वर को एकदेशी मान कर उसके भय से संसार हटा उसे (संसार को) पापी बनाना है। जो मनुष्य कफ्फारा (ईसा द्वारा, गुनाहों से छूटने) से मोक्ष मानते हैं, वे मानो घूस देकर परमेश्वर के दण्ड से बचना चाहते हैं।

इसी भांति जो लोग अवतार मानते हैं, वे भी ईश्वर को एकदेशी मानते हैं, नहीं, तो वह पहिले किस शरीर में नहीं था, जहाँ उसने अवतार लिया।

इसी प्रकार किसी ने उसको सातवें आसमान पर जा बैठाया और किसी ने चौथे आसमान पर उसका स्थान ठहराया। कोई बैकुण्ठ में बताने लगा और कोई क्षीर-सागर में गोता खाने लगा। किसी ने गोलोक को उसका निवास स्थान बनाया और किसी ने कैलाशवासी आ ठहराया। सारांश यह है, कि इन मतमतान्तरों के दीपकों ने अपने परिमित प्रकाश के कारण अपने प्रकाश के बाहर उसे न देख कर इतना ही बताया, जिससे यह समय आ गया कि चारों ओर पापों का समुद्र वेग से बहने लगा। लोग एक आने के लिए झूठ बोलने के लिए तैयार हैं। अपनी आयु ईश्वर भक्ति, धन के लिए गंवा देते हैं। कतिपय मनुष्यों ने तो धन को परमेश्वर की मूर्ति भी बना दिया। भला? उन्हें वैराग्य किस प्रकार हो सकता है । वे समझते हैं कि यदि और किसी की सिफारिश न सुनी जाएगी, तो उसकी श्री जिसके संचय करने में हमारा समस्त जीवन व्यतीत हुआ है, जिसकी भक्ति हमने धर्म, कर्म और सत् असत् का विचार छोड़ कर की है, जिस के लिए हमने लाखों पाप किए हैं, सहस्रों मनुष्यों को धोखे दिए, उसकी सिफारिश (अनुरोध) से तो अवश्य ही काम निकल आवेगा। ऐसे विचारों ने ही तो मनुष्य जाति के मस्तिष्क को हानि पहुँचाई है। नहीं-नहीं? उनको मनुष्य से पशु बना दिया है, क्योंकि पशु आगामी का विचार न करके केवल वर्तमान स्थिति के लिये ही प्रयत्न करता है, इसी प्रकार वर्तमान समय के मनुष्य, धर्म के द्वारा होने वाले भविष्य के प्रबन्ध को छोड़ कर मन से पूर्ण हो जाने वाले वर्तमान के प्रबन्ध में लग गये हैं। उनको यह ध्यान नहीं कि यह धन हमारे मरने पर हमारे संग नहीं जायेगा। इस बात का ध्यान उन्हें हो भी कैसे सकता है? क्योंकि मृत्यु तो आगे होगी और उन्होंने पशुओं से यह पाठ पढ़ लिया है कि आगामी की चिन्ता ही नहीं करनी है, केवल वर्तमान के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। यही कारण है, कि सम्पूर्ण देश का धन अपने अधिकार में लाना चाहते हैं।

यदि धर्म-दृष्टि से कोई ऐसा काम करे, तब तो कोई शिकायत का स्थान नहीं परन्तु यह तो अपने साथियों को हानि पहुँचाकर और उनको अपने वश में लाकर अपना दास बनाना चाहते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि प्राकृतिक नियमानुकूल मनुष्य इस बात में असमर्थ है, कि बिना परोपकार किए अपना भला नहीं कर सकता। क्योंकि कुदरत (ईश्वरीय नियमों) ने मनुष्य के शरीर में भिन्न भिन्न अवयव रख कर यह शिक्षा दी है, कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर का कोई अंग अपनी सहायता से आप ही लाभ नहीं उठा सँकता, जब तक वह अन्य अवयवों को उस में सम्मिलिन न कर लेवे।

इस प्राकृतिक शिक्षा से विदित होता है, कि यदि एक अवयव दूसरे अवयव से विरोध करके अपना काम छोड़ दे अथवा उससे भी जो फल प्राप्त हो, उसे भी अपने पास रख ले, तो परिणाम यह होगा कि वह अवयव अवश्य नष्ट हो जायेगा, क्योंकि उस वस्तु से जो भोजन उसे मिलता था, वह न मिलेगा। कुदरत बतला रही है कि जिस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण अवयव एक दूसरे के लिये काम कर रहे हैं, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के लिए काम करना चाहिए, जिससे उसका अस्तित्व बना रहे अन्यथा अपने लिए काम करने में तो अपने जीवन को बनाये रखना निरा असम्भव होगा। सारांश यह कि स्वार्थ का नाश ही उन्नति का

thearyasamaj.org

पहिला भाग है-इसीलिए नीतिकार ने कहा है:-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थ- यह मेरा और यह दूसरों का है- थोड़ी बुद्धि वालों का ऐसा विचार होता है, परन्तु जो बुद्धिमान हैं, वे तो समस्त संसार को ही अपना कुटुम्ब समझते हैं। जब तक सम्पूर्ण जीवों को अपना न समझा जावेगा, तब तक मनुष्य को कुदरती तौर पर उत्तम कर्म करने की योग्यता ही नहीं होगी।

कुछ मनुष्य यह कहेंगे कि हमें अपनी जाति में दूसरी जाति से स्वत्व प्राप्त करने की जागृति उत्पन्न करनी चाहिए और अपनी जाति की ही सहायता करना उचित है, परन्तु यह विचार (प्राकृतिक) नियम के नितान्त विरुद्ध और नाश करने वाला है, क्योंकि हमारे शरीर में कई जातियाँ विद्यमान हैं, जैसे एक जाति तो ज्ञानेन्द्रियों की दूसरी कर्मेन्द्रियों की और तीसरी नाड़ियों की है। अब यदि ज्ञानेन्द्रियाँ कुदरती यह विचार करलें कि हमें कर्मेन्द्रियों की सहायता न करनी चाहिये तो आँख, हाथ को मार्ग न दिखा कर अपने सजाति नाक, कान, रसना तथा त्वचा को मार्ग दिखावेगी और अपनी वस्तुओं की माहियत (आन्तरिक दशा) बतावेगी, जिसको उठाने की शक्ति इनमें से एक भी नहीं रखती। परिणाम यह होगा कि आँख न तो स्वयं भोजन प्राप्त कर सकेगी और न अपने सजाति ज्ञानेन्द्रियों को भोजन मिलने देगी। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि आँख का काम है कि कर्मेन्द्रिय हाथ पाँव की सहायता करें और हाथ भी ज्ञानेन्द्रिय अर्थात् रसना को सौंप देवें। यह ऐसा उत्तम पाठ मिल रहा है कि कौमी खयाल (जाति का भाव) मनुष्य जाति के लिये हानिकारक है। जब तक मनुष्य प्रत्येक को अपना भाई समझ कर उसके स्वत्व छीनने से न हटेंगे और अपने हृदय में शत्रु-मित्र का भेद रखेंगे तब तक उन्नति का स्वप्न में भी दर्शन न होगा। इसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य बिना जाति-भेद-भाव के प्राणी मात्र की सहायता का प्रयत्न करे, जिससे स्वयं उसका अस्तित्व भी बना रहे।

यहाँ से एक और पाठ भी मिलता है, कि यदि पेट अपने काम को भली भांति न करे और उस भोजन को दूसरों को बाँटने की जगह अपने ही पास इकट्ठा कर ले तो पेट में दर्द आरम्भ हो जाता है और महान् क्लेश होने लगता है। वह सब कुछ तभी होता है, जब जो प्राण-वायु प्रत्येक को उसका भाग पहुँचाता है, पेट की सहायता नहीं करता है। जिस प्रकार प्राण-वायु, शरीर के प्रत्येक अवयव में रह कर उनके काम कराता है तथा पेट की सहायता करके उनको बलिष्ठ करने के लिए आहार पहुँचाता है, इसी प्रकार संसार में धर्म है, जो प्रत्येक मनुष्य से काम तथा उससे दूसरों की सहायता कराना चाहता है। जहाँ समाज में धन इकट्ठा करने का विचार उत्पन्न हो जाता है तो यहीं से उसको कब्ज की शिकायत (मलावरोध का कष्ट) हो जाती है और तुरन्त ही उसके हाथ-पाँव ढीले हो जाते हैं। जिस प्रकार पेट में अधिक समय तक वस्तु के रहने से शरीर के अवयवों को हानि पहुँचती है, इसी प्रकार समाज के धनी होने से प्रत्येक मनुष्य शिथिल हो जाता है और चाहता है कि वह स्वयं काम न करे, क्योंकि जिस सोसाइटी (समाज) की सहायतार्थ वह काम करना चाहता था, अब उस समाज ने धन एकत्रित करके अपनी आवश्यकताओं को काम पर नहीं निर्भर रक्खा- वरन् मजमूआ (इकट्ठा करने) पर रक्खा है। चूँकि पेट में आहार के इकट्ठा पड़े रहने से सिवा हानि के किसी को लाभ नहीं होता, इसी प्रकार समाज के पास अधिक धन रहने से उसके अंग मनुष्यों में शिथिलता होकर अति-हानि पहुँचती है और आपस में स्वार्थ फैल जाता है। पहले मनुष्य, समाज से पाठ लेते थे- अब समाज उनको धन एकत्रित करने का पाठ पढ़ाता है, जो स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार हो नहीं सकता। इसलिए परमात्मा ने बताया कि तुम किसी का धन लेने की इच्छा न करो। जब हम किसी का धन न लेंगे, तो हमें स्वयं अपने श्रम से पैदा करना होगा। जब समाज का प्रत्येक मुहसन (नेक) अंग

thearyasamaj.org

अपने में धर्म रखने वाला हागा, तो समाज भी इसी प्रकार का हो जायेगा। जब समाज इस प्रकार का होगा, तब तो अवश्य ही संसार में सुख-ही-सुख दृष्टिगोचर होगा। जब तक मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक न मानेगा, तब तक प्राण अर्थात् धर्म रह नहीं सकता। अब जिस प्रकार प्राणवायु की सहायता अग्नि से होती है- उसी प्रकार धर्म की सहायता परमात्मा से होती है, जहाँ अग्नि मन्द हुई, वहीं से वायु का बिगड़ना आरम्भ हो जाता है, इसी प्रकार जहाँ ईश्वर का विश्वास और उसके सर्वव्यापी होने का विचार दूर हुआ कि वहीं से धर्म भी बिगड़ने लगता है। इस समय मनुष्य पाप से डरना छोड़ देते हैं।

❑❑

मेरे प्रिय सहपाठी पं0 राजवीर शास्त्री

(डॉ० महावीर मीमांसक)

पं० राजवीर जी शास्त्री को स्वर्गीय लिखते हुए लेखनी काँप रही है। मैं १२ मार्च सन् १९५० में गुरुकुल झज्जर, हरियाणा में अध्ययनार्थ प्रविष्ट हुआ, पं० राजवीर जी शास्त्री मेरे से पहले ही गुरुकुल झज्जर में अष्टाध्यायी पढ़ चुक थे। मैं चूंकि गुरुकुल में एक प्रबल अध्ययन की इच्छा से प्रविष्ट हुआ था, अतः एक-दो वर्ष में ही मैं पिछला अध्ययन समाप्त करता हुआ पं० राजवीर जी शास्त्री की कक्षा तक पहुँच गया जिसमें स्व० पं० सुदर्शन देव जी शास्त्री भी थे।

स्व० पं० राजवीर जी शास्त्री एक मेधावी छात्र ब्रह्मचारी थे। स्वभाव से बड़े नम्र और मृदुभाषी थे। सायंकाल भोजन के बाद भ्रमण करते समय श्लोक गाते हुए सब ब्रह्मचारियों की अगुवाई करते हुए पं० राजवीर जी शास्त्री का चित्र अभी भी मेरे मस्तिष्क में घूम रहा है। तीव्र बुद्धि और स्मरण शक्ति के धनी पं० राजवीर जी शास्त्री सभी शास्त्रों के ज्ञान में निपुण थे। ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त पं० शास्त्री जी ऋषि के विरुद्ध किसी भी विद्वान् को शास्त्रार्थ के लिये चेलैञ्ज करने में सदा उद्यत रहते थे। विद्यालय की सेवा में जब शास्त्री जी बेरी (हरियाणा) में रहते थे, मैं कई दिन तक इनके घर रहा। मेरी माता जी के निधन पर शान्ति यज्ञ करवाने के लिये स्व० पं० शास्त्री जी गाँव में मेरे घर पधारे थे। शान्ति यज्ञ भी करवाया था।

एक व्यक्तिगत घटना है। स्व० शास्त्री जी ने एम०ए० करने के बाद दिल्ली वि०वि० में पी०एच०डी० के लिये अपना नाम पंजीकृत करवाया। वि०वि० के संस्कृत विभाग ने मुझे इनका निर्देशक नियुक्त किया। एक-दो वर्ष के पश्चात् विभाग ने इन के कार्य की प्रगति की रिपोर्ट भेजने के लिये इन्हें पत्र लिखा। सम्भवतः पत्र इन्हें नहीं मिला और इनका नाम कट गया। मुझे अत्यन्त खेद हुआ कि एक विद्वान् वि०वि० की उच्चतम उपाधि लेने से वञ्चित रह गया, जिसके लिये यह बायें हाथ का खेल था। मुझे अभी तक खेद है।

स्व० शास्त्री जी अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान् थे। कन्या गुरुकुल नरेला और गुरुकुल गौतमनगर दिल्ली में इन्होंने अनेक वर्ष निःशुल्क पढ़ाया। इनके अनेक शिष्य और शिष्याएं उच्च पदों पर कार्यरत हैं। स्व० सेठ दीपचन्द जी आर्य ने इन्हें आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का अध्यक्ष पद सौंप रखा था। स्व० शास्त्री जी ने योगदर्शन का भाष्य तथा संस्कारविधि आदि अनेक आर्ष ग्रन्थों का सम्पादन किया। स्व० शास्त्री जी आर्य समाज के गौरव थे। ऐसे उच्चकोटि के विद्वान् के अभाव की क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। प्रभु उन की आत्मा को सद्गति और शोक सन्तप्त परिवार को शान्ति प्रदान करे। विद्या की साधना करते-करते गये हैं अतः उनका जन्म किसी विद्वान् के घर ही होगा।

❑❑

thearyasamaj.org

लोकसवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है

(श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी के एक भाषण का सार)

आजकल लोग ईश्वर की उपासना के लाभ पूछते हैं। मैं ऐसे लोगों के विश्वास के लिए यह मजमून रख रहा हूँ कि हमारे पास ईश्वर की उपासना का क्या अर्थ है। यदि आप किसी मुसलमान से यह प्रश्न करें तो वह कहेगा कि हम खुदा की इबादत करते हैं। "इबद" का अर्थ बदा है अर्थात् वे अपने खुदा के सामने अपने बदा होने की प्रतिज्ञा करते हैं। और उससे शब्द बन्दगी निकला है। लोग आजकल प्रायः एक दूसरे को बन्दगी करते हैं। हिन्दू भी प्रायः ऐसा करते हैं। तो ऐसा कह कर आपको गुलाम बनाया जाता है। इसलिये कम से कम हिन्दुओं को ऐसा शब्द नहीं कहना चाहिये। अब आप एक सनातनी से पूछे वह कहेगा कि हम परमात्मा की भक्ति करते हैं। भक्ति का अर्थ सेवा है। परन्तु आर्य-समाज की उपासना का अर्थ है परमात्मा के निकट होना। परमात्मा के नजदीक रहने का क्या है मतलब इसके साथ ही मुसलमानों की इबादत और सनातनियों की भक्ति इन तीनों चीजों पर रौशनी डालूँगा।

मैंने एक बार दीनानगर के एक शास्त्रार्थ में मुसलमान भाई से पूछा कि आप बतलाएं कि इस नमाज का क्या अर्थ है। इससे क्या लाभ है? उसने फरमाया कि हम खुदा का अदब बजा लाते हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या खुदा इससे प्रसन्न हो जायगा, क्या वह बाह्य चीजों से प्रसन्न होता है या अभ्यंतरिक भाव देखकर? यदि आन्तरिक भाव देख कर तो बाह्य दिखावट का क्या लाभ? इसके अतिरिक्त मैंने यह प्रश्न किया कि सचमुच खुदा प्रसन्न होगा, यदि वह खुश होगा तो उसमें तबदीली आ गई। आपने एक कुरानशरीफ की आयत पढ़ कर इस बात को दर्शाया कि खुदा ने अपने बन्दों को इबादत के लिए उत्पन्न किया उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं इसलिए उस में तबदीली नहीं आती। तो फिर खुश करने का क्या अर्थ? वह भाई, उससे आगे न चल सका। अब आर्य समाज की उपासना को लें। हम पर यह प्रश्न किया जाता है कि उसके समीप जाने का क्या अर्थ है? क्या परमात्मा दूर है जो इसके निकट जाएँ। हमारा कहना यह है कि परमात्मा और जीव के अन्दर मकानी (दैशिक) य जमानी (कालिक) कोई फासला नहीं। मतलब यह है कि यदि हम परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर धारण करलें तो हम उसके निकट चले जायेंगे। परमात्मा हर स्थान पर विद्यमान है। वह जीव के साथ रहता है। हम में और उसके मध्य इलमी फासला है। उदाहरण रूप में कई वस्तुएँ हमारे निकट होती हैं परन्तु हमें पता नहीं चलता। कई बार लेखनी कान में होती है हम उसे मेज पर ढूँढते हैं। गाजियाबाद में एक बार मैंने अंधकार में अपना उपनेत्र (ऐनक) पगड़ी में रख दिया। जब ऐनक का ख्याल आया तो हम इधर-उधर ढूँढते रहे। अन्त में सिर की पगड़ी में से मिल गई। मतलब यह कि यह इलमी भूल थी परमात्मा जाहिलों (मूर्खों) से दूर है और आक़िलों (बुद्धिमानों) के समीप है।

अब सनातनियों की भक्ति को लीजिए। मैंने एक भाई से पूछा कि सेवा के क्या अर्थ हैं। वह खिद्मत के अर्थ न कर सका। मैंने कहा कि समय पर किसी मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करना खिदमत कहलाता है। अर्थात् आवश्यकता पूरा करना। अब आवश्यकता

thearyasamaj.org

किसे कहते हैं? मुझे एक बार अध्यापक ने आवश्यकता का अर्थ बताया कि जिस वस्तु के बिना हमारा जरूर नुकसान हो उसे जरूरत कहते हैं। अर्थात् जिस वस्तु के बिना हम रह नहीं सकते, वही जरूरत है। यदि हम जल न पिएँ तो मर जायें। परन्तु क्या आपने इस बात पर विचार किया है कि जिस ईश्वर की आप जरूरियात (आवश्यकतायें) पूरी कर रहे हैं, उसकी आवश्यकतायें क्या हैं? हम किसी को प्रसन्न करने के लिये सबसे प्रथम यह देखते हैं कि उसे किस वस्तु की आवश्यकता है। मैं एक मनुष्य के घर अभ्यागत रूप से जाता हूँ। वह मुझ से पूछता है कि आप क्या खायेंगे? वह पूछता है कि आप चाय पीवेंगे? मैं कहता हूँ कि चाय मैंने कभी नहीं पी। तब वह कहता है अच्छा दूध पीलो। मैंने कहा दूध रात को पीता हूँ, वह कहता है कि अच्छा पूरी खा लो, रोटी खा लो। मैं कहता हूँ कि अभी रोटी की जरूरत नहीं। गर्जेकि वह ऐसी चीज ढूँढना चाहता है जिससे कि वह मुझे प्रसन्न करे। परन्तु कभी चूक भी हो जाती है। भाषा की गलतफहमी हो जाती है। और सेवा बेजा रीति से भी हो सकती है। एक बार लाला लाजपतराय जी गुजरात काठियाबाड़ में गये। वहाँ उन्हें एक सज्जन ने चाय पर बुलाया। चाय पेश की जब और देने लगे तो लाला जी ने कहा कि काफी है। उन्होंने फिर पूछा फिर लाला जी ने कहा कि काफी है। काफी का अर्थ यह है कि और नहीं चाहिये परन्तु उन्होंने उसको "पीने वाली" समझा। और वह काफी बनाकर लाला जी के सामने ले आए। इस प्रकार बेजा तरीके पर भी खिदमत हो सकती है। एक रोगी को बादाम का हलवा खिला दिया जाये तो यह उसकी सेवा नहीं है बल्कि हानिकारक है। एक वृद्ध को यदि कठिन लड्डू दे दिये जायें तो वह अप्रसन्न हो जायेगा। इसी प्रकार किसी का उदर भरा हुआ हो, उसे खाने के लिए दिया जाये और जो भूखा है उसे न खिलाया जाय यह भी एक गलती है। मूर्ति को हलवा खिलाया जाता है किन्तु वह उसके होठों के आगे नहीं जाता, सब जानते हैं। देहली में स्त्रियाँ एक स्थान पर मूर्ति की पूजा करती हैं वहाँ पर कई पदार्थ खाने के लिये पेश किये जाते हैं। एक बार मुझे उधर से गुजरने का अवसर मिला। देखा स्त्रियाँ मूर्ति के मुख पर हलवा लगा रही हैं। मैंने सोचा चलो इन्हें कुछ उपदेश ही दे चलें। मैंने मूर्ति के समीप जाकर देखा कि मूर्ति के होठों पर हलवा कई दिनों से चिमट कर सूख गया है ओर लकड़ी की तरह हो गया है। मैंने देवियों से कहा यह तो पहला हलवा भी नहीं खाती और इसे क्यों खिलाती हो, देख लो यह कितने दिन का हलवा इस पर लगा हुआ है। देवियाँ देख कर हंस पड़ीं। मैंने कहा यह मूर्तियाँ कुछ नहीं खातीं यदि यह खाने लग जावे तो सब से पहले उनका विरोध पुजारी ही करेंगे क्योंकि अगर मूर्तियाँ ही सभी कुछ खा जावें तो पुजारियों को क्या मिले।

परमात्मा पूर्ण है उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, परन्तु फिर भी कोई लड्डू ले जा रहा है कोई फल। ईश्वर पूर्ण है और प्रकृति जड़। जो चीज पूर्ण है वह किसी से कुछ नहीं चाहती वह दूसरों के लिये है, प्रकृति न अपने सम्बन्ध में कुछ जानती है और न किसी के विषय में किन्तु ईश्वर अपने आप को भी जानता है और दूसरों को भी। एक ईश्वर पूर्ण है और दूसरी प्रकृति। न ईश्वर को किसी चीज की आवश्यकता है न प्रकृति को। उन से कोई चीज ली जा सकती है, उन्हें दी नहीं जा सकती। आर्य समाजी उपासना करना चाहता है ईश्वर के समीप बैठना चाहता है इसलिए कि ईश्वर से कुछ लेकर उसकी खिदमत करे। अब खिदमत

thearyasamaj.org

किस तरह की जाती है। आप एक पंडितजी के घर जाते हैं और एक हाथी का खिलौना भी उनके घर ले जाते हैं। आप पण्डित जी के लड़के को वह हाथी देते हैं और कहते हैं कि लो बालक, इस पर सवारी करो। पंडित जी बहुत प्रसन्न होंगे और आपका सत्कार करेंगे परन्तु यदि वही हाथी आप लेकर पण्डित जी से कहें, पण्डितजी! यह है आप की सवारी के लिए, पण्डितजी अति क्रोध करेंगे। उनकी स्त्री अलग नाराज, बच्चा दूर-दूर। अब हाथी को दोनों अवस्थाओं में एक ही घर में रहना है फिर कारण क्या है कि बच्चे को देने पर पण्डित जी खुश पर जब उन्हें दिया गया तो नाराज।

लोक सेवा ही ईश्वर की खिदूमत है। पण्डित को उस हाथी की जरूरत नहीं किन्तु उसके लिये वह अत्यन्त हेय है परन्तु यदि उसे दिया तो वह बड़ा नाराज होगा। क्या ईश्वर नाराज न होगा। यदि उसे किसी वस्तु की आवश्यकता न हो और दी जाय। यदि वही चीज उस के बच्चों को दी जाय तो वह प्रसन्न होगा। और यह उसकी सेवा है, भक्ति है। खिदमते खलक भी ईश्वर की उपासना और खिदूमत है और अगर उस के बच्चों को लाभ पहुँचेगा तो ईश्वर प्रसन्न होगा। अब आप सब शंका में पड़ जाओ कि यदि लोक सेवा ही ईश्वर की उपासना है तो दो समय संध्या पढ़ने की क्या आवश्यकता है। इसके सम्बन्ध में आपको बतला दूँ कि दो समय संध्या पढ़ना जरूरी ही है। संध्या करना अपने आपको खलक की सेवा के लिए तैयार करना है।

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

ही तो सत्य हो सकता है। अन्यथा बात कैसे सत्य हो सकती है? सोचने की बात है कि आर्यसमाज अपनी इतनी बड़ी उम्र में गुरुकुलों में ज्योतिष नहीं पढ़ा रहा है, तो क्या ज्योतिष वेद का अंग नहीं है?... इत्यादि।

सनातन समाजी (अधिकतर, सब नहीं) समझते हैं कि-

वाह! हम जो समझते हैं वो मिथ्या नहीं हो सकता है। वो कौन सा सत्य है जिसे हम नहीं जानते? निस्सन्देह कुछ पंचांगकार बहुत ही विद्वान् हैं, वे ये सब तथ्य जानते हैं। सन् १६७३ में अपना शोधपरक लेख "नक्षत्र समान नहीं, असमान हैं" प्रकाशति करने वाला एक शिखर विद्वान् पंचांगकार आज २०१४ में भी समान और २७ नक्षत्रों पर आधारित पञ्चांग ही छाप रहे हैं। भारत के राष्ट्रीय कैलेण्डर में २१ मार्च का दिन "नव वर्ष दिवस" घोषित और प्रकाशित चला आ रहा है। फिर भी नव वर्ष दिवस के रूप में १ जनवरी का ही सर्वत्र व्यवहारिक बोलबाला है जो कि न प्राकृतिक तौर पर ठीक है न मान्यता के ही। और तो और, अपनी जन्म तिथियाँ तक लोग अंग्रेजी तिथियों से मना रहे हैं। पूछने को तो मेरे जैसे हम बहुत लोग हैं भी किन्तु है, कोई जवाब देने वाला? मैंने आर्ष तिथि पत्रक में अंग्रेजी तिथियों को द्वितीयक रखा है, वैदिक तिथि पहले रखी हैं। है किसी को, इस बात की खुशी?

एक महानुभाव पूछते हैं, "आप ने तो पञ्चांग में महीने भी मधु, माधव जैसे पता नहीं क्या दिए हैं हमने तो ये महीने कभी सुने ही नहीं हैं।" मैने ये मास नाम वेदों से लिए हैं। अब अगर आप वेद की बात को नहीं जानते तो ये बताओ कि ये मेरी कमी है कि आपकी? खुशी की बात है कि उनको कुछ अहसास हुआ।

आदरणीय! आपके लिखे से मुझे बहुत बड़ी सांत्वना मिली है और इसी से मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ कि उक्त दोनों "भाइयों" की समझ सनातन वैदिक संस्कृति के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होगी।

❑❑

thearyasamaj.org

मेरे पथ-प्रदर्शक - पूज्य पिताश्री पं. राजवीर शास्त्री

(रेखा आर्या - पुत्रवधू)

२५ सितम्बर का दिन था। सुबह के चार बजे थे। उनके चार दिन से ऑक्सीजन लगी हुई थी। सुबह ऑक्सीजन ने भी उनका साथ छोड़ दिया और उनका शरीर निर्जीव हो गया था। उन्होंने दुनिया से विदा ले ली, चार दिन से लगातार बुखार से जूझ रहे थे। आँखें बंद थीं सिर्फ पाइप से ही मुँह में खाना डाला जा रहा था। परिवार के लिए ये बड़ी दुःखद घड़ी थी। पर ईश्वर की इच्छा के आगे कुछ नहीं हो सकता था। सभी दुःखी थे। लेकिन आर्य जगत के लिए भी एक बड़ी क्षति थी, उन्होंने हमेशा स्वाध्याय को महत्व दिया। दो साल से लगातार बीमारी से जूझते हुए भी उन्होंने "दयानन्द सन्देश" को कभी नहीं छोड़ा। उनका बिस्तर ठीक करते हुए हमेशा मुझे उनके सिरहाने "दयानन्द सन्देश" और बहुत सी किताबें मिला करती थीं। उन्होंने अपने पास से किताबों को नहीं हटाने दिया। उनका बीच में बोलना बंद हो गया था फिर भी वे इशारे से "दयानन्द संदेश" माँगते रहते थे और बैठे-बैठे पढ़ते रहते थे।

एक बार अस्पताल में उनके पास आर्यसमाज से कुछ लोग मिलने आये तब उन्होंने कहा आप लोग स्वाध्याय करते तो नहीं होंगे, लेकिन किया करो। आर्यसमाज को आगे बढ़ाओ यह मेरी इच्छा है। मेरा भी बिल्कुल ये बड़ा सौभाग्य रहा कि मैं उनकी सेवा कर पाई। वे मुझे हमेशा आर्यसमाज में जाने के लिए प्रेरित करते रहते थे। रविवार के दिन सुबह नहाकर वे हमेशा पहले आर्यसमाज में पहुँच जाते थे और हमसे कह कर जाते थे कि जल्दी आना और उनकी कृपा से ही हम यजमान बनते थे और वे बहुत खुश होते थे। उनकी यही इच्छा रहती थी कि हम समाज में जरूर जायें। वे कितने भी बीमार होते थे, लेकिन आर्यसमाज में जाना नहीं छोड़ते थे। उनमें आर्यसमाज के प्रति इतनी लगन और आस्था थी कि उसे हम अपने शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते। गुरुकुल पौंदा में आचार्य जी उन्हें पढ़ाने के लिए लेने आते थे। वे चाहे कितने भी बीमार हों लेकिन उनकी इच्छा होती थी कि मैं जाऊँ और बच्चों को उच्च शिक्षा प्रदान करूँ। उन्होंने अनेकों गुरूकुल में जाकर बहुत पढ़ाया। उन्हें पढ़ाना बहुत अच्छा लगता था। कोई भी बच्चा उनसे पढ़ना चाहता था तो उसे प्यार से पढ़ाते थे। बच्चों को बहुत प्यार करते थे। उनके मन में करूणा और प्यार दोनों ही था। सबके लिए आदर और सम्मान था।

एक बार आर्यसमाज से कोई विद्वान् आये हुए थे उन्होंने इशारे से पूछा इन्हें खाना खिलाया या नहीं? किसी को भी बिना भोजन कराए नहीं जाने देते थे। उनके बारे में क्या लिखूँ। शब्द कम पड़ जाते हैं। उन्होने अपने जीवन के अन्तिम दो साल बहुत संघर्ष किया। उनकी आत्मा सिर्फ आर्यसमाज को समर्पित थी। उन्होंने वैदिक कोष नामक पुस्तक लिखी, हमेशा "दयानन्द संदेश" पत्रिका से जुड़े रहे। कितने ही पत्र उनके पास आते थे। उनकी शंका का समाधान करना ही उनका काम था। कभी भी उन्होंने अपने समय का दुरूपयोग नहीं किया हमेशा मुझसे भी कहते रहते थे कि स्वाध्याय करो यही जीवन का लक्ष्य है। उनकी बातें याद करके आज भी मन बहुत भारी हो जाता है। उनकी सेवा करते-करते एक आदत सी हो गई थी। जो

thearyasamaj.org

अब महसूस होती है। मन दुःखी हो जाता है। जितना लगाव उनसे हो गया था, उतना किसी से नहीं हुआ। आज वो चले गए हैं घर खाली हो गया है। उन्हें याद करके मन बहुत दुःखी होता है। आज तक इतना दुःख किसी के जाने का नहीं हुआ, जितना उनका होता है। ऐसा लगता है कि कोई चीज़ हमसे छिन गई है। बस अब तो उनके संस्कार और आदर्श पर चलकर ही हम उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। आर्यसमाज ने एक ऐसी दिव्य आत्मा को खो दिया है, जो बार-बार जन्म नहीं लेती। संसार में ऐसी आत्मा जरूर सुगन्ध फैलाती रहेगी। उनका शरीर हमें छोड़ गया है लेकिन उनके कर्म, संस्कार और शिक्षा ये हमारा मार्गदर्शन कर हमेशा मार्ग प्रशस्त करती रहेंगी। ऐसी विलक्षण प्रतिभा जिनमें अभिमान बिल्कुल नहीं था इतने पुरस्कार पाने के बाद भी उनमें कभी घमंड नहीं आया। हमेशा साधारण बने रहे। खराब स्वास्थ्य के चलते हुए भी उन्होंने यज्ञ का साथ कभी नहीं छोडा। मुझे याद है कि उन्होंने गुरूकुल पौंदा में एक वेद का यज्ञ कराया था उनकी तबियत खराब थी। पैर सूज गये थे, बैठने में असमर्थ थे फिर भी पूरी निष्ठा ओर आस्था से यज्ञ को पूरा किया। ऐसी कर्मठ निष्ठावान विभूति कभी-कभी देखने को मिलती है। उनका परिवार के प्रति भी पूरा समर्पण था। उनके तीनों पुत्र एवं पुत्री आज्ञाकारी और निष्ठावान हैं। उन्होंने अपने बच्चों को बहुत ही सभ्य व सुसंस्कृत संस्कार प्रदान किये। पुत्रों ने पिताजी की पूरी तरह से सेवा की। ये संस्कार हमारे लिए उनकी सबसे बड़ी पूँजी हैं। इसी पूँजी को हम आगे बढ़ायें। जिस तरह उनका जीवन पुष्प की तरह खिला और उनके कार्यो की सुगन्ध सारे संसार में छोड़ गया। इसी तरह हमें भी अपने जीवन को संवारना होगा। किसी कवि ने कहा भी है -

ये नरतन जो तुमको मिला है
गवाने के काबिल नहीं है।
तेरी हर एक सास अनमोल,
हीरा ये गवाने के काबिल नहीं है।

ईश्वर ने हमें जो जन्म दिया है उसे सार्थक करें। हमारे जीवन को सार्थक बनाने में उनका आशीर्वाद सदा हमारे साथ रहे और आप सबका भी आशीर्वाद सदा हमारा मार्ग प्रशस्त करता रहे, यही मैं प्रभु से कामना करती हुई अपनी कलम को विराम देती हूँ। जो कुछ मुझसे त्रुटि हो गयी हो उसके लिए मैं क्षमा चाहती हूँ। ओ३म्।

पुत्रवधू
रेखा आर्या

और राजवीर शास्त्री जी नहीं रहे

पुष्पा शर्मा

२५ सितम्बर २०१४ को बिस्तर से उठने से पहले यह समाचार मिला कि शास्त्री जी नहीं रहे तो अत्यन्त दुःख हुआ। कभी स्वयं से प्रश्न करते, कभी स्वयं ही उत्तर देते कि जो ज्योति हमेशा दूसरों को दीप्तिमान करती रही, वह हमेशा के लिए बुझ गई। हम यह भी नहीं कह सकते कि यह सब अचानक हो गया क्योंकि वह काफी लम्बे समय से अस्वस्थ चल रहे थे। चलना, फिरना भी लगभग समाप्त सा ही हो गया था। याददाश्त भी कुछ कम हो गई थी।

सन् २००० में साधारण परीक्षण करने पर पता

thearyasamaj.org

चला कि वह कैंसर से पीड़ित हैं। फिर भी उन्होंने इसे साधारण रूप में लिया। यूँ कहिए कि उन्होंने इस बीमारी को अपने मस्तिष्क पर हावी नहीं होने दिया। यह कहना कि मैं बीमार नहीं हूँ, बड़े आश्चर्य की बात है। शास्त्री जी भाग्य के धनी थे। बीमारी के समय उनकी खूब देखभाल की गई।

क्या कहें, उनकी विद्वता के बारे में लगता है, कलम छोटी पड़ जाएगी। कैसे करें उनकी महानता की व्याख्या? शास्त्री जी विद्वता में अतुल्य थे। हमारी मुलाकात उनसे कम ही होती थी। वे हमारे पितातुल्य थे। उनका मन्द-मन्द व सधा हुआ बोलना उनकी विद्वता की पहचान करता था। चेहरे की भाव-भंगिमाओं से लगता था कि शायद ही उन्हें क्रोध आता हो। वह विद्या की भीनी-भीनी खुशबू बिखेरते रहते थे, जिससे समाज एवं गुरुकुल सुगन्धित हो रहे थे।

विद्या दान करना उनका परम धर्म था। विद्या धन के बारे में उनके विचार कुछ इस प्रकार थे -

''न तो इसको चोर चुराए,
न ही राजा छीन सके।
न कोई इसको भ्राता बाटे,
न कोई इसको बीन सके।

धन का स्वार्थ उन्हें कभी छू भी नहीं पाया। हमें यह बताया गया कि वह ग्रीष्मकालीन अवकाश में गुरूकुलों में शिक्षा प्रदान करते थे वह भी अलग तरीके से। आश्चर्य की बात तो यह है कि अपने समय के अनुसार नहीं बल्कि विद्यार्थियों के समयानुसार।

उन्हें अनेक बार पुरस्कृत किया गया। समाज में इतना ऊँचा स्थान पाकर भी जमीन की ओर देखना एक साधारण बात नहीं होती है। इतने बड़े विद्वान् के बारे में क्या लिखूँ, शब्दों के द्वारा बयां ही नहीं कर सकती। उन्होंने अपना सारा जीवन अध्ययन में लगा दिया। उनकी विद्वत्ता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। उनके उच्च विचार चेहरे से पढ़े जा सकते थे। मितभाषी के साथ-साथ मधुरभाषी होना शायद उन्हें विरासत में मिला था। यह सत्य है कि संस्कार और भावना बड़ी प्रबल होती है इसीलिए यह सब उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। एक बात मैं कभी नहीं भूलूंगी कि शास्त्री जी की शोकसभा में न जाने कितने महापुरुषों ने श्रद्धांजलि अर्पित की। वह गुणों की खान के अथाह समुद्र थे। सभी के बोलने के लिए सीमित समय होने के कारण महानुभावों ने अपने संक्षिप्त विचार अभिव्यक्त किए। गागर में सागर जैसा वातावरण बन गया था। दुःखी तो सभी थे। महानुभावों के विचारों से लग रहा था कि वे अभी भी हमारे सम्मुख बैठे हुए हैं, उठकर अपने विचार अभिव्यक्त करेंगे। हम यह नहीं कह सकते कि उनकी मृत्यु हुई है, बल्कि इस देह को त्यागने के बाद वे और भी अधिक महान हो जाएंगे, ऐसा हम सभी का मानना है।

वे व्याकरण के ज्ञाता थे। पिछले चार दशक से आर्य जगत की पत्रिका 'दयानन्द सन्देश' का सम्पादन करते आ रहे थे। अपनी निष्पक्ष लेखनी से लेख द्वारा शंका का समाधान करना उनका परम कर्तव्य था। मैं स्वयं को बहुत धन्य समझ रही थी कि कभी-कभार उनके विचार सुनने का अवसर मिल जाता था।, जो उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्य है, इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता, यही संसार का नियम है।

मैं एक बार फिर लिखना चाहूँगी कि शास्त्री जी आज भी हमारे मस्तिष्क एवं पुस्तकों में जीवित हैं और सदा रहेंगे। मैं इन पंक्तियों द्वारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

''इसीलिए तो हे मानव अब,
विद्याधन को पाना है।
ईश्वर का पाकर सान्निध्य
द्वार मोक्ष के जाना है।

पुष्पा शर्मा
जिला सहकारी बैंक भवन, बेगमाबाद मार्ग
मोदीनगर-२०१२०४, गाजियाबाद

thearyasamaj.org

आर./आर. नं० १६३३०/६७ दिसम्बर २०१४
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/१२/२०१४

दिसम्बर २०१४

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -ff)/Š„‚/„,f„-f†
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) f††/„,f„-f†

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में......................
ग्राम......................
डा......................
जिला......................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६